साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी : भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन

हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद की पी-एच. डी.
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

1983

प्रस्तुतकर्ता
सी. एस. अन्सारी बाषा, एम. ए., एम. फिल्.,

निर्देशक :
डॉ. वै. वेंकटरमण राव,
एम. ए. (हिन्दी); एम. ए. (तेलुगु); पी-एच. डी.,
रीडर, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।

अध्यक्ष :
डॉ. चन्द्रभान रावत,
एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद ।

दकन में जो दकिनी मीठी बात का,
अदा नईं किया कोई इस धात का ।

§ कुतुबमुश्तरी पृ.29 §

दक्खन सा नहीं ठार संसार में,
पंच फाजिलां का है इस ठार में ।

दक्खन है नगीना अंगूठी है जग,
अंगूठी कूं हुरमत नगीना है लग ।

दक्खन मुल्क कूं धन अजब साज है,
के सब मुल्क सर और दक्खन ताज है

दक्खन कूं जो देखेगो ऐ नार तूं,
न करसी कधीं याद बंगाले कूं ।

दक्खन मुल्क भोतीच खासा अहे,
तिलंगाना इसका खुलासा अहे ।

§ कुतुब मुश्तरी - 179 §

दखन में जो दखिनी मीठी बात का,
अदा नईं किया कोई इस धात का ।

{ कुतुबमुश्तरी पृ.29 }

दक्खन सा नहीं ठार संसार में,
पंच फाज़िलां का है इस ठार में ।

दक्खन है नगीना अंगूठी है जग,
अंगूठी कूं हुरमत नगीना है लग ।

दक्खन मुल्क कूं धन अजब साज है,
के सब मुल्क सर होर दक्खन ताज है

दक्खन कूं जो देखेगी ऐ नार तूं,
न करसी कधीं याद बंगाले कूं ।

दक्खन मुल्क भोतीच खासा अहे,
तिलंगाना इसका खुलासा अहे ।

{ कुतुब मुश्तरी - 179 }

DECLARATION

I hereby declare that this Dissertation entitled "SAHITYIK DAKHINI HINDI-BHASHA VYGNAYNIK ADHYAYAN" has been written by me during 1980 - 1983 under the guidance and supervision of Dr. Y. Venkataramana Rao, M.A. (Hindi), M.A. (Telugu), Ph.D., Reader in Hindi, University of Hyderabad, Hyderabad, in the fulfilment of the requirement of the award of Doctor of Philosophy degree of the University of Hyderabad.

I also declare that this Dissertation is my own effort and has not been submitted to any other University before.

17/1/83

Signature of the Candidate.

CERTIFICATE FROM THE RESEARCH SUPERVISOR

This isto certify that this thesis entitled "SAHITYIK DAKHINI HINDI-BHASHA VYGNAYNIC ADHYAYAN" is a record of Research Work done by the Candidate during the period of his study under my direction and that this thesis has not previously formed the basis for the award to the Candidateof any Dgree or Diploma or assocateship or other similar title.

Signature of the Supervisor.

17/7/83

प्राक्कथन

प्राक्कथन

हिन्दी भाषा विकास के लिए संविधान द्वारा निर्देशित सूत्रों के आलोक में आज के विद्वज्जन और भाषाविद ऐसे अनेक सूत्रों की खोज में संलग्न हैं, जिनके आधार पर हिन्दी सरल एवं सर्वजन ग्राह्य बन सके । इस दृष्टि से हिन्दी के विविध क्षेत्रों में विकास की स्थितियों को देखा परखा जा रहा है । विकास के क्षेत्र में चाहे वह भक्ति का क्षेत्र हो, भाषा का क्षेत्र हो या साहित्य का क्षेत्र हो उत्तर और दक्षिण के बीच आदान-प्रदान का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है । हिन्दी भाषा के क्षेत्र में उत्तर से दक्षिण की ओर जो भाषा-प्रवाह बहा है उसका केन्द्र दक्खन है । यह सर्व स्वीकृत बात है कि दक्खन तीन प्रान्तों का सम्मिलित क्षेत्र है, जिसमें आन्ध्र, महाराष्ट्र और कर्नाटक के कुछ प्रान्त आ जाते हैं । इस क्षेत्र में 14वीं शती से जो एक भाषा का उद्भव और विकास हुआ, उसे दक्खिनी नाम से अभिहित किया गया । इसका विकास व्यवहार और साहित्य के क्षेत्रों में भी लगभग इसी समय से होने लगा । इस विकास में अनेक भाषाओं का और बोलियों का योगदान रहा है । इसमें संस्कृत, अरबी-फारसी, तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं का उल्लेखनीय योगदान है । इस भाषा के मूल स्रोत - ब्रज, अवधी, राजस्थानी, हरियाणवी, पंजाबी आदि की भाषिक व्यवस्थाओं में देखे जा सकते हैं । आज भाषाविदों से यह स्वीकारा गया है कि दक्खिनी भाषा और साहित्य के अभाव में हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहास का अध्ययन अधूरा ही है ।

हिन्दी को आधुनिक रूप देने में जिन भाषाओं ने सहयोग दिया है उनमें दक्खिनी हिन्दी भी एक है । इस दृष्टि से दक्खिनी हिन्दी के लेखकों और कवियों की रचनाओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन बहु महत्वपूर्ण होगा । इस बात ने मुझे आकर्षित किया । जब एम.फिल्. के लिए एक शोध-विषय चयन की समस्या उठी तो मैंने जिज्ञासावश पुरूषोत्तम कवि के दक्खिनी हिन्दी नाटकों की भाषा का अध्ययन विषय को लिया था और मेरे एक साथी श्री जीवन कुमार ने "सबरस" की भाषा को । दोनों का अध्ययन एक साथ चला और उस समय हमारे सामने अनेक ऐसी भाषिक विशेषताएं आईं, जो अत्यन्त रोचक और महत्वपूर्ण लगीं । उसी समय से मेरे मन में इस अध्ययन को आगे बढ़ाने की इच्छा जगी । जब पी.एच.डी. की उपाधि के लिए शोधार्थी के लिए मेरा चयन हुआ तो मुझे अत्यन्त सात्विक आनन्द का अनुभव हुआ, क्योंकि मेरी इच्छापूर्ति का अवसर मुझे शीघ्र ही प्राप्त हो गया । तदर्थ "साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन" शीर्षक विषय प्रस्तावित किया गया तो हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने स्वीकृति दे दी ।

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की कृतियों के चयन की समस्या उठी तो अनेक प्रकाशित और अप्रकाशित रचनाएं मेरे सामने आईं । प्रकाशित रचनाओं में अधिक साहित्यिक फारसी लिपि में थीं तो कुछ देवनागरी में । हिन्दी के माध्यम से शोध कार्य करने के लिए देवनागरी लिपि में प्रकाशित रचनाओं को लेना अधिक युक्तियुक्त मान लिया गया, क्योंकि संदर्भों में उल्लिखित उदाहरणों को आसानी से जाँचा परखा जा सकता है । ऐतिहासिक और भौगोलिक सीमाओं की

दृष्टि से देखा गया तो मेरे सामने कुछ रचनाएं अध्ययन के चयन योग्य सिद्ध हुईं । वे हैं - "सबरस", "कुतुबमुश्तरी-वजही; सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल-गवासी; मनसमझावन-कवि शाह तुराब; हिन्दुस्तानी नाटक - पुरुषोत्तम कवि । ये रचनाएं 19वीं सती तक के उदाहरणों को अपने में समेटी हुई हैं, और विभिन्न प्रान्तों से सम्बन्धित साहित्यकारों द्वारा रचित भी है । इसके साथ-साथ दक्खिनी हिन्दी में प्राप्त गद्य, पद्य और नाटक [गीतसहित] इनमें सम्मिलित हैं ।

भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी को परखने से भाषा के स्वरूप गठन का इतिहास और आन्तरिक संरचनाओं का बोध होता है । इस अध्ययन का लक्ष्य इन दोनों दिशाओं पर प्रकाश डालना है । प्रस्तुत अध्ययन को छः अध्यायों में नियोजित किया गया है और अन्त में उपसंहार अध्ययन के सार के रूप में है । अध्याय योजना इस प्रकार है ।

प्रथम अध्याय "विषय प्रवेश" शीर्षक से प्रस्तुत है । इस अध्याय में दक्खिनी शब्द का शाब्दिक अर्थ, दक्खिनी हिन्दी के प्रचलित नाम, दक्खिनी हिन्दी के रूप - क्षेत्र, हिन्दी-खड़ीबोली-उर्दू-हिन्दुस्तानी और दक्खिनी हिन्दी का सम्बन्ध, दक्खिनी हिन्दी का स्थान, दक्खिनी हिन्दी साहित्य और भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास आदि का विवरण प्रस्तुत है । प्रस्तुत अध्ययन के लिए स्वीकृत आधारभूत कृतिकारों और उनकी कृतियों का परिचय भी इस अध्याय में सम्मिलित है ।

द्वितीय अध्याय ध्वनि विवेचन से संबंधित है । इसमें साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी की समस्त ध्वनियों का भाषा वैज्ञानिक विवेचन अभिप्रेत

रहा है । संयुक्त और द्वित्व व्यंजन संयोग और ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं का भी सोदाहरण विवेचन इस अध्याय में प्रस्तुत है ।

तृतीय अध्याय शब्द विवेचन से संबंधित है । इस अध्याय में साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त शब्द-भण्डार का विवेचन किया गया है । शब्द-भण्डार का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्रोतगत विश्लेषण के साथ विभिन्न प्रकारों से शब्द-भण्डारों का वर्गीकृत विवेचन इस अध्याय में लक्ष्य रहा है ।

भाषा अध्ययन में पदविवेचन का महत्वपूर्ण स्थान है । पदविवेचन दो अध्यायों में प्रस्तुत है, जिनके शीर्षक हैं - पदविवेचन-I और पदविवेचन-II

चतुर्थ अध्याय "पदविवेचन-I" क्रियेतर पद व्यवस्था से संबंधित है । इस अध्याय में पदरचना संबंधी व्यवस्थाओं का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत है । संज्ञा - लिंग वचन व्यवस्था, संरचनात्मक प्रत्यय, उपसर्ग, कारकीय व्यवस्था, सार्वनामिक व्यवस्था, विशेषण और अव्यय शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन प्रस्तुत है ।

पंचम अध्याय "पदविवेचन-II" क्रियापद संरचना से संबंधित है । इस अध्याय में क्रिया धातुओं के स्रोत, धातु रूप प्रणाली, प्रेरणार्थक क्रिया, सहायक क्रिया, कृदन्त, आज्ञार्थक क्रियारूपों का विधान, काल रचना इत्यादि कतिपय क्रियागत प्रयोग के विविध रूपों पर विवेचन है ।

षष्ठ अध्याय "वाक्य विवेचन" का है । वाक्य विवेचन अपने में शोध का एक स्वतन्त्र विषय ही है । इस अध्याय में दक्खिनी हिन्दी में

प्रयुक्त वाक्य संरचनाओं का संक्षिप्त विवेचन ही संभव हो सका है । अपनी सीमाओं में यह अध्ययन प्रस्तुत है, जो आगे की संभावनाओं पर प्रकाश डालता है । इसके अन्तर्गत वाक्य, वाक्य के तत्व, पदबन्ध - संज्ञा पदबन्ध - क्रिया पदबन्ध, वाक्य प्रकारों का संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत है ।

अंत में उपसंहार अध्ययन के सार के रूप में प्रस्तुत किया गया है । तत्पश्चात् परिशिष्ठ-। में साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी भाषिक नमूने दिये गये हैं जिनसे भाषा रूप का परिचय हो सकता है । परिशिष्ठ-।। में सहायक ग्रन्थ-सूची प्रस्तुत है ।

शोध कार्य एक सामूहिक अनुष्ठान है । इस अनुष्ठान में सबसे पहले मुझे जो दिशा मिली है, वह दक्खिनी हिन्दी पर अब तक हुए शोध कार्य से । इस कार्य को सम्पन्न करनेवाले व्यक्तित्वों में प्रमुखगण्य हैं - डॉ॰ श्रीराम शर्मा, डॉ॰ राजकिशोर पाण्डेय, डॉ॰ भीमसेन "निर्मल", डॉ॰ मुहम्मद आजम, डॉ॰ परमानंद पांचाल और डॉ॰ विमला मदन तथा डॉ॰ विद्यासागर, जिन्होंने अपने शोध कार्यों के द्वारा दक्खिनी हिन्दी के अध्ययन को कुछ दिशाएं दी हैं । इनके साथ-साथ अन्य विशेषज्ञ भी हैं, जिन्होंने भाषा अध्ययन को सुसंपन्न बनाने के संकेत दिये हैं । इन सबका मैं हृदय से आभारी हूँ । इनके अलावा जिन अधिकारी विद्वानों की पुस्तकों से दिशा मिली है, उनका भी मैं आभारी हूँ । हैदराबाद विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं प्रोफेसर श्रद्धेय डॉ॰ चन्द्रभान रावत के प्रति मैं हार्दिक आभार और कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय और व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकालकर इस शोध कार्य के लिए मुझे प्रेरणा देते रहे, जिनकी महती कृपा के अभाव में प्रबन्ध का इस रूप में

प्रस्तुत होना असम्भव था । मैं अपने पूज्य गुरू, हिन्दी विभाग के उपाचार्य तथा मेरे शोध प्रबन्ध के निर्देशक श्रद्धेय डा॰ ऐ॰ वेंकटरमणराव, के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस शोध का निर्देशन कार्य हर्ष के साथ स्वीकार किया और आवश्यकता से अधिक समय देकर इस शोध कार्य को सुसंपन्न बनाया है । मैं विभाग के अन्य गुरूजनों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने मूल्यवान सुझाव देकर मुझे प्रेरणा दी ।

अस्तु, बुधजनों के हाथ में शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत है ।

. . . .
. . . . . .
. . . .
. .

.. ...

संकेत-सूची

.. ...

संकेत-सूची

अ.फा.	=	अरबी-फारसी
अधिकरण.	=	अधिकरण कारक
अन्य.	=	अन्य पुरुष
उत्तम.	=	उत्तम पुरुष
उदा.	=	उदाहरण
एक./एक.व.	=	एक वचन
(कुतु.)	=	कुतुबमुश्तरी
कृ.	=	कृदन्त प्रत्यय
क्रि.वि.	=	क्रिया विशेषण
क्रि.प.	=	क्रिया पदबन्ध
गुण./गुण.वि.	=	गुणवाची विशेषण
त.	=	तद्धित प्रत्यय
त.कृ.	=	तद्धित और कृदन्त प्रत्यय
ते.	=	तेलुगु
पु.	=	पुल्लिंग
पृ.	=	पृष्ठ संख्या
बहु./बहु.व.	=	बहुवचन
भविष्य.	=	भविष्यकाल
भूत.का.कृ.	=	भूतकालिक कृदन्त
मध्यम.	=	मध्यम पुरुष
(मन.)	=	मनसमझावन
मूल	=	मूलरूप
व.	=	वचन
वि.सं.	=	विक्रम संवत्
# वा #	=	वाक्य

सं.	=	संस्कृत
संप.	=	संज्ञापदबन्ध
संख्या.	=	संख्यावाचक विशेषण
(सब.)	=	सबरस
सा.द.हि.	=	साहित्यिक दक्खनी हिन्दी
(सै)	=	सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल
सम्प्रदान.	=	सम्प्रदान कारक
सम्बन्ध.	=	सम्बन्ध कारक
स्त्री.	=	स्त्रीलिंग
(हि.ना.)	=	हिन्दुस्तानी नाटक
√	=	धातु
>	=	विकसित रूप, से उत्पन्न
~	=	विविधता (Diviation)
/ /	=	ध्वनिग्राम लेख (Phonetic writing
{ }	=	पदरूपांशात्मक लेख (Morphological w
Ø	=	शून्य रूपिम (zero Morpheme)
→	=	परिवर्तन सूचक दिशानिर्देशक
[ ]	=	संस्वनात्मक लेख (Phonetic writi

....

विषय-सूची

विषय-सूची

प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश — पृ.सं. 1 - 59

0. प्रास्ताविक .. ..
1. दक्खन दखन दकन
1.1. दक्खनी दखिनी दकनी
1.2. दक्खनी हिन्दी के प्रचलित नाम
1.3. दक्खनी हिन्दी के रूप
1.4. दक्खनी हिन्दी का क्षेत्र
1.5. हिन्दी-खड़ीबोली-उर्दू-हिन्दुस्तानी-दक्खनी हिन्दी
1.6. हिन्दी में दक्खनी हिन्दी का स्थान
2. दक्खनी हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास
2.1. काल विभाजन
2.1.1. आदिकाल
2.1.2. मध्यकाल
2.1.3. उत्तरकाल
2.1.4. आधुनिक काल
3. दक्खनी हिन्दी : विकास और भाषा का इतिहास
3.1. दक्खनी हिन्दी भाषा का इतिहास - काल विभाजन
3.1.1. संक्रान्ति काल
3.1.2. आरम्भिक काल
3.1.3. उन्नति काल
3.1.4. स्तब्ध काल

3.1.5. आधुनिक काल

4. दक्खिनी हिन्दी-शोध कार्य अनुशीलन

4.1. पाठानुसन्धान

4.2. इतिहास परक अध्ययन

4.3. भाषा सम्बन्धी शोध कार्य

5. प्रस्तुत अध्ययन - आधारभूत कृतिकार और कृतियाँ

6. निष्कर्ष

....

द्वितीय अध्याय : ध्वनि विवेचन : 60 - 121

0. प्रास्ताविक

1. दक्खिनी हिन्दी स्वनिम-परिचय

1.1. स्वर

2. अनुनासिक स्वर

3. व्यंजन

3.1. दक्खिनी हिन्दी की ध्वनि व्यवस्था

4. संयुक्त व्यंजन व्यवस्था

4.1. आदि स्थानीय व्यंजन-संयोग

4.2. मध्य स्थानीय व्यंजन-संयोग

4.3. त्रि-व्यंजनात्मक-संयोग

4.4. अन्त्य स्थानीय व्यंजन-संयोग

4.5. द्वित्व व्यंजन

5. ध्वनि परिवर्तन दिशाएँ

5.0. स्वर

5.1. आगम

5.1.1. स्वरागम

5.1.2. स्वरलोप

5.1.3. स्वर संधि

5.1.4. स्वरादेश

5.1.5. स्वर विपर्यय

5.1.6. ह्रस्वीकरण

5.1.7. दीर्घीकरण

5.2. व्यंजन

5.2.1. व्यंजनागम

5.2.2. व्यंजन लोप

5.2.3. अल्पप्राणीकरण

5.2.4. महाप्राणीकरण

5.2.5. सघोषीकरण

5.2.6. अघोषीकरण

5.2.7. दंत्यीकरण

5.2.8. मूर्धन्यीकरण

5.2.9. कंठ्यीकरण

5.2.10. नासिक्यीकरण

4. हिन्दी क्षेत्रीय शब्द

5. विदेशी शब्द

5.1. अरबी शब्द

5.2. फारसी शब्द

6. निष्कर्ष

....

चतुर्थ अध्याय : पद विवेचन-I 153 - 251

0. प्रास्ताविक

1. संज्ञा विवेचन

1.1. मूल रूप

1.1.1. तिर्यक रूप

1.2. वचन

1.2.1. मूल रूप

1.2.2. तिर्यक रूप

1.2.3. अरबी-फारसी वचन व्यवस्था

1.3. लिंग व्यवस्था

1.3.1. लिंगगत अव्यवस्था

2. संरचनात्मक प्रत्यय

2.1. अरबी-फारसी प्रत्यय

3. उपसर्ग

3.1. तत्सम उपसर्ग

3.2. तद्भव उपसर्ग

3.3. उपसर्गवित प्रयुक्त संस्कृत शब्द और पदांश

3.4. अरबी-फारसी उपसर्ग

4. कारकीय व्यवस्था

4.1. कर्ता कारक

4.2. कर्म कारक

4.3. करण कारक

4.4. संप्रदान कारक

4.5. अधिकरण कारक

4.6. अपादान कारक

4.7. सम्बन्ध कारक

4.8. संबोधन

5. सार्वनामिक व्यवस्था

5.1. पुरुषवाची सर्वनाम

5.1.1. उत्तम पुरुष - एक वचन

5.1.2. बहुवचन

5.2. मध्यम पुरुष : एक वचन

5.2.1. बहुवचन

5.3. अन्य पुरुष

5.3.1. दूरवर्ती - एक वचन

5.3.2. बहुवचन

5.4. निकटवर्ती - एक वचन

5.4.1. बहुवचन

5.5. निजवाची सर्वनाम

5.6. सम्बन्धवाचक सर्वनाम

5.7. अनिश्चय वाचक सर्वनाम

5.8. प्रश्नवाची सर्वनाम

6. विशेषण

6.1. संस्कृत तत्सम विशेषण

6.2. संस्कृत तद्भव विशेषण

6.3. तत्सम विशेषण पदबन्ध

6.3.1. तद्भव विशेषण पदबन्ध

6.4. अरबी-फारसी विशेषण

6.5. अन्य विशेषण

6.6. विशेषण व्यवस्था

6.6.1. लिंग से प्रभावित विशेषण

6.6.2. वचन से प्रभावित विशेषण

6.6.3. कारक से प्रभावित विशेषण

6.6.4. लिंग, वचन और कारक से अप्रभावित विशेषण

6.7. व्युत्पन्न विशेषण

6.8. सार्वनामिक विशेषण

6.9. संख्यावाची विशेषण

6.9.1. पूर्णांक बोधक गणनावाचक विशेषण

6.9.2. अपूर्णांक बोधक गणना सूचक विशेषण

6.9.3. क्रमवाचक संख्या विशेषण

6.9.4. समुदाय वाचक संख्या विशेषण

6.9.5. अनिश्चय वाचक विशेषण

7. अव्यय

7.1. क्रिया विशेषण वाची

7.1.1. स्थान वाचक क्रिया विशेषण

7.1.1.1. हिन्दी की बोलियों से आगत

7.1.2.2. पंजाबी से आगत

7.1.1.3. अरबी-फारसी से आगत

7.2. काल वाचक क्रिया विशेषण

7.2.1. हिन्दी की बोलियों से आगत

7.2.2. अरबी-फारसी से आगत

7.3. अवधि सूचक

7.3.1. हिन्दी की बोलियों से आगत

7.3.2. अरबी फारसी से आगत

7.4. पौन: पुन्य वाचक

7.5. परिणाम वाचक

7.5.1. हिन्दी और उसकी बोलियों से आगत

7.5.2. अरबी फारसी से आगत

7.6. रीतिवाचक क्रिया विशेषण

7.7. निषेधवाचक, नकारार्थक, स्वीकारात्मक अव्यय

7.7.1. मराठी से आगत

7.7.2. विरोध दर्शक-अरबी फारसी से आगत

7.8. संकेत वाचक अव्यय - अरबी फारसी से आगत

7.9. संयोजक अव्यय - अरबी, फारसी से आगत

7.10. सम्बन्ध सूचक अव्यय

7.10.1. हिन्दी और उसकी बोलियों से आगत

7.10.2. अरबी फारसी से आगत

7.11. समुच्चय बोधक अव्यय
7.12. विस्मय बोधक अव्यय
7.13. अवधारण वाचक अव्यय

8. निष्कर्ष

....

पंचम अध्याय : पद विवेचन-II : 252 - 299

0. प्रास्ताविक
1. क्रिया धातु : स्रोत
1.1. धातु रूप प्रणाली
1.2. मूल धातु
1.2.1. स्वरान्त एकाक्षरात्मक धातु
1.2.2. व्यंजनान्त धातु
1.2.2.1. एकाक्षरात्मक-अकर्मक-सकर्मक
1.2.2.2. द्विअक्षरात्मक-अकर्मक-सकर्मक
1.2.2.3. त्रि-अक्षरात्मक-अकर्मक-सकर्मक
1.3. व्युत्पन्न धातु
1.3.1. अकर्मक सकर्मक
1.3.2. प्रेरणार्थक -
(क) प्रथम प्रेरणार्थक और (ख) द्वितीय प्रेरणार्थक
1.4. संयुक्त धातु
1.4.1. संज्ञा + क्रिया धातु = संयुक्त क्रिया धातु
1.4.2. क्रियाधातु + क्रिया धातु = संयुक्त क्रिया धातु
1.4.3. विशेषण + क्रिया धातु = संयुक्त क्रिया धातु

2. आज्ञार्थक क्रिया
2.1. आज्ञार्थ सूचक
2.2. आदरार्थ सूचक

3. सहायक क्रिया
3.1. वर्तमान निश्चयार्थ
3.2. भूत निश्चयार्थ
3.3. भविष्य निश्चयार्थ

4. कृदन्त
4.1. वर्तमान कृदन्त
4.2. भूतकालिक कृदन्त
4.3. भविष्यत् कालिक कृदन्त
4.4. पूर्वकालिक कृदन्त

5. काल रचना
5.1. वर्तमान काल
5.2. भूतकाल
5.2.1. सामान्य भूतकाल
5.2.2. आसन्न भूतकाल
5.2.3. पूर्ण भूतकाल
5.2.4. अपूर्ण भूतकाल
5.3. भविष्यत् काल
5.3.1. सामान्य भविष्य
5.3.2. संभाव्य भविष्य
5.4. काल रचना और तात्कालिकता बोध

6. अन्य क्रिया रूप रचना

6.1. क्रियार्थक संज्ञाएं
6.2. लग, सक, चुक, पड़ा का क्रिया प्रयोग
6.3. द्वैत क्रिया पद रचना
6.4. वर्तमान काल कृदन्त + अन्य क्रिया रूप
6.5. भूतकालिक कृदन्त + अन्य क्रिया रूप
6.6. मूल धातु + अन्य क्रिया रूप
6.7. पूर्वकालिक कृदन्त + अन्य क्रिया रूप
6.8. क्रियार्थक संज्ञाएं + अन्य क्रिया रूप

7. निष्कर्ष

....

षष्ठ अध्याय : वाक्य विवेचन : 300 - 338

0. प्रास्ताविक

1. वाक्य

2. वाक्य के तत्व
2.1. वाक्य के लक्षण

3. पदबन्ध
3.1. संज्ञा पदबन्ध
3.2. क्रिया पदबन्ध
4. वाक्य प्रकार
4.1. व्याकरण घटन के आधार पर वाक्य प्रकार
4.1.1. साधारण वाक्य

4.1.2. मिश्र वाक्य

4.1.3. संयुक्त वाक्य

4.2. भाव या अर्थ के आधार पर वाक्य प्रकार :

4.2.1. विधेय वाचक वाक्य

4.2.2. निषेध वाचक वाक्य

4.2.3. आज्ञानु-सूचक वाक्य

4.2.4. इच्छानुसूचक वाक्य

4.2.5. प्रश्नसूचक वाक्य

4.2.6. विस्मयसूचक तथा संबोधन वाक्य

4.2.7. संभावनार्थ वाक्य

4.2.8. प्रतिबन्धतार्थक वाक्य

5. अन्य वाक्य

5.1. परसर्ग रहित वाक्य

5.2. तेलुगु वाक्य संरचना से प्रभावित वाक्य

6. खड़ी बोली की व्याकरणिक व्यवस्था का उल्लंघन

7. निष्कर्ष

....

उपसंहार 337 - 346

....

परिशिष्ठ - 1 : साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी के कुछ भाषिक नमूने 347 - 356

परिशिष्ठ - 2 : सहायक ग्रन्थ-सूची 357 - 374

....

प्रथम अध्याय : विषय-प्रवेश

0• प्रास्ताविक : •• •••• ••••••

हिन्दी साहित्य का अध्ययन दक्खनी हिन्दी साहित्य अध्ययन के अभाव में अधूरा ही रहेगा, क्योंकि दक्खनी हिन्दी, हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण कड़ी है । प्राकृतिक रूप से या मौलिक रूप से भारत देश को हम दो भागों में बाँट नहीं सकते । ऐसी कोई परम सत्ता की लकीर नहीं है, जो भारत देश को दो भागों में बाँट सकें । किन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम भारत को दक्षिण और उत्तर में बाँट सकते हैं । विकास के हर क्षेत्र में, चाहे वह साहित्यिक क्षेत्र हो, चाहे भक्ति का क्षेत्र हो, जो योगदान उत्तर से प्राप्त है वही योगदान दक्षिण से भी है । इसमें सन्देह नहीं है कि दक्षिण ने हिन्दी के विपुल साहित्य राशि को विस्तृत और श्रेष्ठ बनाने में योगदान दिया है । इस योगदान को समझने के लिए दक्खनी हिन्दी के और गहन अध्ययन की आवश्यकता है ।

दक्खनी हिन्दी की उपलब्ध प्रायः सभी रचनाएं फारसी लिपि में प्राप्त होने के कारण उर्दू विद्वान् इस साहित्य को उर्दू साहित्य मानते हैं। इसी कारण से हिन्दी विद्वान् भी इस फारसी लिपिबद्ध साहित्य को हिन्दी साहित्य मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं। जब दक्षिण में दक्षिणी भाषाओं की लिपियों में लिखा गया, साहित्य उभर कर आने लगा तो तब विद्वानों में जो भ्रम था वह धीरे-धीरे दूर होने लगा। इसके साथ साथ हिन्दू लेखकों की रचनाएं भी प्रकाश में आने लगीं तो दक्खनी हिन्दी का भारतीय रूप निखरने लगा। वस्तुत, हिन्दी भाषा को आधुनिक रूप देने में जिन भाषाओं का योगदान है, उनमें दक्खनी का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

इस अध्याय में दक्खन, दक्खनी शब्दों का शाब्दिक अर्थ - दक्खनी हिन्दी के प्रचलित नाम - दक्खनी हिन्दी के रूप - दक्खनी हिन्दी का क्षेत्र, हिन्दी - खड़ी बोली - उर्दू - हिन्दुस्तानी और दक्खनी हिन्दी का सम्बन्ध, हिन्दी में दक्खनी हिन्दी का स्थान, दक्खनी हिन्दी साहित्य - संक्षिप्त इतिहास - काल विभाजन - परिचय, दक्खनी हिन्दी भाषा - इतिहास - काल विभाजन - परिचय, दक्खनी हिन्दी - शोधकार्य अनुशीलन आदि शीर्षकों के अन्तर्गत संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना इस अध्याय का ध्येय रहा है। साहित्यिक दक्खनी हिन्दी के स्वरूप निर्धारण के लिए आधारभूत कृतिकार और उनकी कृतियों का परिचय भी देकर इस अध्याय में संपूर्ण अध्ययन की भूमिका प्रस्तुत करने का प्रयास है।

1· दक्खन~दख्न~दकन [< दक्षिण] :

शब्द की उत्पत्ति की दृष्टि से दक्खन~दख्न~दकन दक्षिण शब्दभव हैं । दक्षिण शब्द दिशावाची है । दिशावाची शब्द भाषासूचक शब्दों के विशेषण के रूप में तो मिलते हैं; जैसे पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी । लेकिन एक भाषा विशेष के लिए दिशावाची शब्द का प्रयोग भारत में सिर्फ दक्खिनी के लिए ही प्रयुक्त है । वैसे तो इस दिशावाची शब्द का प्रदेश सूचक अर्थ में प्रयोग का एक लम्बा इतिहास है । रामायण और महाभारत में दक्षिणापथ का उल्लेख मिलता है ।[1] यही दृष्टि आगे चलकर आधुनिक युग में भी चलती रही है । भूगोलवेत्ताओं ने भी दक्खन शब्द का प्रयोग नर्मदा और कृष्णा नदियों के बीच का प्रदेश के लिए किया है ।[2]

द्रविडा: सिन्धु सौवीरा: सौराष्ट्रा दक्षिणा पथा:
वंगांग मगधा मत्स्या समृद्धा: काशिकोसला:

- वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड, सर्ग-10
श्लोक 37-38

एते गच्छन्ति बहव: पन्थानो दक्षिणापथम्
अवन्ती मृक्षवन्तं च समतिक्रम्य पर्वतम्
एष विन्ध्यो महा शैल: पयोष्णी च समुद्रगा
आश्रमाश्च महर्षीणाममी पुष्प फलान्विता:
एष पन्था विदर्भाणामयं गच्छति कोसलान्
अत: परंच देशो यं दक्षिणे दक्षिणा पथ:

- महाभारत 3/58/20-20

2 "The fixed possession of the Mohommedans having for many centuries after their invasion of the Deccan, extended no further South than the river Krishna, the name of Deccan came to signify in Hindustan, the countries situated between those two rivers only".
— A geographical, statistical and Historical description of Hindostan and adjacent countries Vol.II, P.3
— Walter Hamilton.

भोगोलिक दृष्टि से दक्खन के अन्तर्गत वर्तमान महाराष्ट्र, आन्ध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल प्रदेश का भूभाग आता है। यही दक्खन प्रान्त दक्खिनी हिन्दी का भी प्रदेश है। दक्खिनी हिन्दी के प्रमुख रचनाकारों ने अपनी कृतियों में "दक्खन" शब्द का प्रयोग उपरोक्त स्थानों के लिए किया है। मुल्ला वजही ने दक्खन प्रान्त की चर्चा करते हुए अपनी कृति "क़ुतुब मुश्तरी" में लिखा है -

" दक्खन सा नहीं ठार संसार में,
पंच फाज़िलां का है इस ठार में।
दक्खन मुल्क कूं धन अजब साज है,
के सब मुल्क सर और दक्खन ताज है।
दक्खन मुल्क भौतीच खासा अहे,
तिलंगाना इसका खुलासा अहे।" *

गवासी ने अपनी कृति "सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल" में उस समय के अनेक स्थानों का उल्लेख किया है। "दक्खन" नाम का भी उल्लेख किया है -

" खुरासान रूम और शाम और खुतन
लंका और गुजरात दिल्ली दकन"[2]

कवि शाह तुराब ने अपनी कृति "मनसमझावन" में दक्खन प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के एकता के बारे में कहते हुए लिखा है -

" चमन क्या है दरकार सैरे - चमन सूं,
न मतलब रखे हिन्द व मुल्के - दकन सूं।"[3]

---

* क़ुतुब मुश्तरी - पृ. 179

2 सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल - पृ. 58

3 मनसमझावन - पृ. 9

उक्त उदाहरणों से यह कहा जा सकता है कि 15वीं शती तक भारत का दक्षिण भूभाग दक्खन के नाम से अभिहित किया गया है ।

1.1. दक्खिनी दखनी दकनी :

स्थानवाची दक्खन शब्द का प्रयोग धीरे-धीरे उस भाषा के लिए प्रयुक्त किया गया, जिसका दक्षिण में बहमनी और बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर आदि से सम्बन्धित मुसलमान कवियों ने साहित्य के लिए उपयोग किया है । इन राजवंशों का इतिहास यह स्पष्ट करता है कि पन्द्रहवी शती से लेकर अठारहवीं शती तक इनके दरबारों में दक्खिनी हिन्दी भाषा साहित्य की गद्दी पर प्रतिष्ठित थी । उत्पत्ति की दृष्टि से दक्खन शब्द से ही दक्खनी का सम्बन्ध है । दक्खिनी दक्षिण के लोगों द्वारा व्यवहृत भाषा को सूचित करती है । लेकिन यह संज्ञा हिन्दी के उस भाषा रूप को सूचित करती है, जो हिन्दी में अनेक भाषाओं के अभिसरण से विकसित हुई है । यहाँ हिन्दी संज्ञा उन सब हिन्दी की बोलीगत रूपों की समिष्टि बोधक है, जिनमें ब्रज, राजस्थानी, अवधी आदि भाषाएँ भी सम्मिलित होती हैं । इसीलिए दक्खिनी को दक्खिनी हिन्दी संज्ञा भी उपयुक्त मानी जा सकती है । डा॰ ग्रियरसन महोदय की मान्यता है कि दक्खिनी हिन्दुस्तानी का वह रूप है जिसका प्रयोग दक्षिण में रहनेवाले मुसलमान लोग करते हैं । * लेकिन यह तर्क उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि दक्खिनी हिन्दी सिर्फ मुसलमान लोगों द्वारा प्रयुक्त और साहित्यिक भाषा के रूप में गृहीत नहीं है, बल्कि दक्षिण के हिन्दुओं की भी भाषा है । इसकी पुष्टि

---

* भारत का भाषा सर्वेक्षण - भाग 1 - सर जार्ज ग्रियर्सन
अनुवादक : निर्मला सक्सेना - पृ॰ 25

श्री पुरुषोत्तम जी कृत हिन्दुस्तानी नाटक करते हैं । नाटक के क्षेत्र में भाषा का प्रयोग भाषा की लोकप्रियता की ओर संकेत करती है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि दक्षिण की जनता, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, भी इस भाषा को समझती थी और नाटकों के सार्वजनिक प्रदर्शन से इसकी ओर उनकी रुचि प्रकट होती है ।

1.2. दक्खिनी हिन्दी के प्रचलित नाम :

वैसे दक्खिनी हिन्दी अनेक नामों से अभिहित है । दक्खिनी हिन्दी के कृतिकारों ने जानबूझ कर ही अपनी रचनाओं में अपनी भाषा विषयक चर्चा के संदर्भ में उर्दू शब्द का प्रयोग नहीं किया है । उन्होंने अपनी भाषा का परिचय जहाँ कहीं दिया है वहाँ उसे हिन्दी, हिन्दवी, दक्खनी ~ दकनी ~ दखनी और हिन्दुस्तानी नामों से संबोधित किया है । दक्खिनी हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मुल्लावजही ने अपनी कृति "कुतुब मुश्तरी" में कहा है -

दक्खिनी :

" दकन में जो दखिनी मीठी बात का,
अदा नईं किया कोई इस धात का" । *

और एक जगह कहते हैं -

" यो किस्सा यो मसला हुआ दकनी "[2]

सनअती ने अपनी मसनवी "किस्से बेनजीर" में अपनी भाषा

---

* कुतुब मुश्तरी पृ. 29,75

2 वही पृ. 75

दखनी माना है -

> जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है
> सो दखनी ज़बाँ उसकूं आसान है *

"गुलशने इश्क" में नुसरती ने भी अपनी भाषाको दखनी माना है -

> सफाई की सूरत की है आरसी,
> दखनी का किया हूँ शेर फारसी ।[2]

"फूलबन" में इब्ने निशाती ने अपनी भाषा के लिए दखनी शब्द का प्रयोग किया है -

> उसे हर किस के तें समजा के बोल,
> दखनी की बात सूं सार क्या घोल ।[3]

आरम्भिक काल के कवि कुरैशी बीदरी ने अपनी रचना "भोगबल" में लिखा है -

> सो इस शीह के दौर में बीदर मुकाम
> थो शायर किया नज़्म दक्खनी तमाम*

हाशमी ने अपनी कृति "यूसुफ जुलेखा" में अपनी भाषा दक्खनी माना है (5) -

---

* दक्खनी का पद्य और गद्य - डा॰ श्रीराम शर्मा - पृ॰230
2 दक्खनी हिन्दी विकास और इतिहास - डा॰ परमानंद पांचाल द्वारा उद्धृत पृ॰30
3 फूलबन - इब्ने निशाती - संपादक - देवीसिंग वेंकट सिंह चौहान, पृ॰9
4 दक्खनी हिन्दी विकास और इतिहास - डा॰ परमानंद पांचाल द्वारा उद्धृत पृ॰29

तेरे शेर का जग में बजनी है नाउं
नको मीत कर दूसरी बोली मिलाउं

<u>हिन्दी</u> :

दक्खनी हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने अपनी भाषा को हिन्दी माना है। दक्खनी हिन्दी साहित्य का प्रसिद्ध गद्य काव्य सबरस में मुल्लावजही ने अपनी भाषा हिन्दी ठहराया है -

" हिन्दुस्तान में, <u>हिन्दी</u> ज़बान सूं इस लताफ्त इस छन्दां सूं नज़्म होर नसर मिलाकर, गुलाकर यूं नईं बोल्या" *

गोलकुण्डा के प्रसिद्ध लेखक मीरां याकूब ने [सन् 1667] अपनी रचना "शमायलुल अतकिया" में अपनी भाषा के लिए हिन्दी शब्द का प्रयोग किया है -

"शाह अमीनुद्दीन आमासनी अपनी हयात के वक्त में मुझे इशारत में किए - तूजे यो "शमायलुल अतकिया" किताब कूं <u>हिन्दी</u> ज़बान में ल्यावे तो हर किसी कूं समज आवें ।[2]

मीरां जी शम्सुल उश्शाक ने अपनी भाषा को हिन्दी माना है -

" है अरबी बोल केरे । और फारसी भी तेरे
ये हिन्दी बोलूं सब । उस अर्थों के सबब"[3]

---

* सबरस - मुल्ला वजही - पृ.10
2 दक्खनी का प्रारंभिक गद्य - राजकिशोर पाण्डेय द्वारा उद्धृत - पृ.2
3 दक्खनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा द्वारा उद्धृत, पृ.33

बुरहानुद्दीन जानम ने अपनी कृति "इर्शादनामा" में अपनी भाषा को हिन्दी माना है -

"ये सब बोलूं हिन्दी बोल
पन तू अनभौ सेती खोल
x x x x
ऐब न राखें हिन्दी बोल
माने तो चख देखें खोल" *

बहरी ने अपनी कृति "मनलगन" में अपनी जुबान को हिन्दी माना है -

हिन्दी तो जबान है हमारी
कहने न लगी हमन कूं भारी" [2]

कवि शाह तुराब ने अपनी कृति "मनसमझावन" में अपनी भाषा को हिन्दी माना है -

"मरहट्टी बात में पोती च्य बोल्या, मैं उसका रम्ज
सब दखनी में खोल्या, भी "मन समझावन"
उसका नाम रखा है लेकिन सरबसर हिन्दी है भाका"[3]

हिन्दवी :

कुछ कृतिकारों ने अपनी भाषा को हिन्दवी, हिन्दुई माना

---

* दक्खनी हिन्दी विकास और इतिहास - डॉ. परमानन्द पांचाल द्वारा उद्धृत - पृ.27

2 दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा द्वारा उद्धृत, पृ.33

3 मनसमझावन - कवि शाह तुराब - सम्पादक - डॉ. [illegible]

है । शेख आरफ ने अपनी रचना "मोतरहार" में अपनी भाषा को हिन्दवी कहा है -

" नज़्म लिखा ह रव मौजूं आन
यो सब हिन्दवी कर आसान" *

शाह मीरान ने अपनो भाषा को हिन्दवी कहा है -

" नज़्म लिखा रव मौंजू आन
यो सब हिन्दवी कर आसान"²

अब्दुल ने अपनी कृति "इब्राहीम नामा" में अपनी भाषा को "हिन्दुई" कहा है -

" ज़ुबां हिन्दुई मुझ सो यूं देहलवी
न जानूं अरब और अजम मसनवी "³

हिन्दुस्तानी :

तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार श्री पुरुषोत्तम जी अपने नाटकों की भाषा को हिन्दुस्तानी कहा है । "रामदास चरित्र नाटक की भूमिका में पुरुषोत्तम कवि ने अपना मन्तव्य प्रकट किया है । उन्होंने लिखा है -

केवल देशी भाषाओं के समान है तुर्की । (आन्ध्र में उर्दू को "तुरकम" कहते हैं अतः यहां तुर्की से मतलब उर्दू से है ।) संस्कृत पद बहुला देशी भाषाओं सी है हिन्दुस्तानी । हिन्दी, हिन्दुस्तानी ऐसे पर्याय शब्द माने जाते सकते हैं, पर व्यवहार में थोड़ा अन्तर है । संस्कृत के व्यस्त

---

* दक्खिनी का प्रारंभिक गद्य - राजकिशोर पाण्डेय द्वारा उद्धृत - पृ.।
2 - वही -
3 दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास - डा॰परमानन्द पांचाल द्वारा उद्धृत, पृ. 27

पदों का और सिंहासन, जत्तन, जन्म आदि तद्भव शब्दों का ही प्रयोग करते हुए बोली जानेवाली भाषा "हिन्दी" है । मन चाहे समासों को भरकर बोली जानेवाली भाषा हिन्दुस्तानी है ।" *

दक्खनी हिन्दी को किस नाम से पुकारा जाये यह विद्वानों के लिए एक प्रश्न है । लेकिन दक्खनी के लिए अनेक दक्खनी हिन्दी साहित्यकारों ने दक्खनी हिन्दी, हिन्दवी, हिन्दुई और हिन्दुस्तानी अभिधानों का प्रयोग किया है । किन्तु इसे "दक्खनी हिन्दी" ही मानना उचित होगा । दक्खनी को भी अब प्रायः हिन्दी माना जाता है । डॉ॰ नगेन्द्र का कहना है -

अब प्रायः लोग केवल दक्खनी या दक्खनी तथा उसके पहले के उत्तर भारत के मसऊद, खुसरो तथा शकरगंज आदि के साहित्य की भाषा के लिए ही हिन्दुई या हिन्दी नाम का प्रयोग करते हैं ।"[2]

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ॰ भोलानाथ तिवारी की दृष्टि में दक्खनी हिन्दी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है ।[3]

1.3. दक्खनी हिन्दी के रूप :

जब दो विभिन्न क्षेत्रों से आए हुए भिन्न भाषा-भाषी आपस में मिलते हैं तो मिश्रित भाषा का उद्भव और विकास संभव है । जिस भाषा में एक से अधिक भाषाओं का मिश्रण होता है उसको

---

* श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक - संपादिका - श्रीमती के.शारदा "पुरोवाक्" शीर्षक के अन्तर्गत - डॉ॰ भीमसेन निर्मल जी द्वारा उद्धृत ।

2 हिन्दी साहित्य का इतिहास - संपादक - डॉ॰ नगेन्द्र, पृ.26

3 हिन्दी भाषा - डॉ॰ भोलानाथ तिवारी - पृ.234

मिश्रित भाषा कहते हैं । इस प्रकार की भाषा का जन्म कुछ विशेष परिस्थितियों में होता है -

1. दो से अधिक भाषाओं की भौगोलिक सीमाएँ एक ही भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत आती हों ।
2. कोई भाषा क्षेत्र विभिन्न व्यापारी लोगों के लिए व्यापार केन्द्र बना हुआ हो ।
3. किसी भाषा क्षेत्र के अन्तर्गत ऐतिहासिक दृष्टि से एक से अधिक शासकों के द्वारा शासन किया गया हो ।
4. किसी मानक भाषा क्षेत्र में गैर भाषी क्षेत्र वाले आकर बस गए हों ।

उपरोक्त परिस्थितियों में भाषा के स्वरूप निर्माण में कोई मूलाधार या मानक भाषा बनी रहती है और अन्य भाषाओं के शब्द एक-एक करके भाषा में सम्मिलित होते हैं । दक्खिनी हिन्दी के उद्भव में इस प्रकार की स्थिति को देखा जा सकता है । इस प्रकार की मिश्रित भाषा व्यापारिक उद्देश्य से प्रचलित होती है । इसमें विज्ञान, दर्शन, साहित्य को लेकर रचना नहीं हो पाती लेकिन इससे सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है और यह भी माना जा सकता है कि यह मिश्रित भाषा सिर्फ दैनिक व्यवहार में जीवित रहती है । इसका साहित्यिक प्रयोग प्रायः नहीं मिलता । लेकिन दक्खिनी हिन्दी इसका एक अपवाद अवश्य है ।

वैसे दक्खिनी हिन्दी के प्रान्तीय कई रूप उभरते हैं । लेकिन मोटे तौर पर दो रूप विवेच्य हैं - एक बोलचाल का रूप और दूसरा साहित्यिक रूप । डॉ॰ ग्रियर्सन ने दक्खिनी हिन्दी को भारतीय आर्य भाषा परिवार के अन्तर्गत माना है और दक्खिनी के कई रूप प्रस्तुत किये

है, जैसे बम्बई की दक्खिनी, मद्रास की दक्खिनी ।* बोलचाल की दक्खिनी हिन्दी स्थानीय भाषाओं के प्रभाव से अलग-अलग दिखाई देती है । जैसे - औरंगाबाद की भाषा में मराठीपन अधिक है तो गुलबर्गा की भाषा में कन्नड़ की झलक । उसी प्रकार गोलकुण्डा तथा हैदराबाद की भाषा में उर्दू तथा तेलुगु शब्दों की झलक मिलती है तो मद्रास की दक्खिनी पर तमिल का प्रभाव । साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी रूप 14 वीं सदी से बीजापुर, गोलकुण्डा, गुलबर्गा, औरंगाबाद आदि दक्खन प्रान्तों में उभरा है तथा इस साहित्य का विकास भी इसी समय में हुआ । साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी जो दक्खन के विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न कृतियों के माध्यम से उभरी है, का भाषापरक अध्ययन दक्खिनी हिन्दी की कई शैलियों को प्रस्तुत करता है । हैदराबाद के आसपास रचित साहित्य में अरबी-फारसी शब्दों की मात्रा अधिक दिखाई देती है । इसके अलावा संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्द, मराठी तथा तेलुगु शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । इसके प्रमुख उदाहरण है वजहीकृत सबरस, कुतुब मुश्तरी, गव्वासीकृत सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल आदि कृतियाँ ।

आधुनिक काल में तेलुगु भाषी श्री पुरुषोत्तम जी कृत दक्खिनी हिन्दी नाटक भी भाषा अध्ययन की दृष्टि से रोचक हैं । इन नाटकों में संस्कृत युक्त दक्खिनी हिन्दी का साहित्यिक रूप है । इसी प्रकार मद्रास राज्य के तिरुनामल निवासी कवि शाह तुराब कृत "मनसमझावन" में भी संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का रूप देखा जा सकता है ।

---

* भारत भाषा सर्वेक्षण - भाग 1 - सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन संपादक-डॉ. निर्मला सक्सेना, पृ. 128-133

1.4. दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र :

वैसे तो किसी भाग की निश्चित क्षेत्रीय रेखा खींची नहीं जा सकती, फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से भाषाई सीमाएं माननी पड़ती हैं । दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र दक्षिण भारत के महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और मद्रास प्रान्त को मान सकते हैं । बोलचाल का रूप तो उपरोक्त प्रान्तों में देखा जा सकता है । बोलचाल रूप में प्रान्तीय भाषाओं का प्रभाव भी है जैसे - हैदराबाद की दक्खिनी हिन्दी में तेलुगु के शब्द, महाराष्ट्र की दक्खिनी हिन्दी में मराठी के शब्द, कर्नाटक की दक्खिनी हिन्दी में कन्नड के शब्द । उत्तरी सीमा में प्रयुक्त बोलचाल की दक्खिनी के सम्बन्ध में जार्ज ग्रियर्सन का मत है -

" यद्यपि कोई पूर्ण निश्चित विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती फिर भी नर्मदा घाटी के दक्षिण में सतपुड़ा की श्रृंखलाओं में और उससे सम्बन्धित पहाड़ियों को परिनिष्ठित हिन्दुस्तानी और दक्खिनी की सीमा मान सकते हैं ।" * इन्होंने दक्खिनी की दक्षिणी और पश्चिमी सीमा समुद्र-तट माना है, शायद इसी मान्यतासे बंबई की दक्खिनी के उदाहरण दिए हैं । दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रो. दीपचन्द जैन का विचार है - "इसकी कोई निश्चित भौगोलिक सीमा नहीं है । उत्तर-पूर्वी पंजाब और दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों से निकल कर जो लोग गुजरात, महाराष्ट्र और हैदराबाद की ओर चले गये उनकी सन्तानें आज भी दक्खिनी हिन्दी बोलती हैं ।[2]

डॉ. भगवतीचरण चतुर्वेदी जी ने दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र

---

* भारत भाषा सर्वेक्षण - भाग - 1, सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन - अनुवादक - निर्मला सक्सेना - पृ. 136

2 हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो. दीपचन्द जैन, पृ. 94

विस्तृत माना है । उनका मन्तव्य है -

"दक्खिनी हिन्दी भाषी बड़ौदा, बरार, त्रावनकोर, कोचिन, मद्रास, मैसूर, कुर्ग और हैदराबाद दक्षिण तक फैले हुए हैं ।" *

दक्खिनी हिन्दी का विकास जिस क्षेत्र में हुआ, वह तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं का मिलन क्षेत्र था । निम्नांकित शासकों के अन्तर्गत दक्खिनी हिन्दी का विकास हुआ तथा उसे पर्याप्त प्रश्रय प्राप्त हुआ । साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का विस्तृत सृजन कार्य भी इसी क्षेत्र में हुआ था । शासन के प्रमुख क्षेत्र हैं -

शासन क्षेत्र	शासन	शासन काल
गुलबर्गा तथा बीदर	बहमनी शासन	1350 से 1525 ई.
बीदर	बरीदशाही-शासन	1487 से 1619 ई.
अहमदनगर	निज़ामशाही शासन	1460 से 1633ई.
बीजापुर	आदिलशाही शासन	1460 से 1686ई.
गोलकुण्डा तथा हैदराबाद	कुतुबशाही शासन	1512 से 1687ई.

परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में डॉ. श्रीराम शर्मा जी का मत है -

"परिनिष्ठित और साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी का क्षेत्र बीजापुर, गुलबर्गा और हैदराबाद तक सीमित है । विशेष कारणों से निश्चित अवधि के लिए इस सीमा का विस्तार औरंगाबाद तक हुआ ।"[2]

दक्खिनी हिन्दी क्षेत्र के सम्बन्ध में डॉ. श्रीराम शर्मा का मन्तव्य अधिक मान्य ठहरता है ।

---

* हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास - डॉ. भगवती चरण चतुर्वेदी, पृ.2

1.5. हिन्दी-खड़ी बोली – उर्दू – हिन्दुस्तानी और दक्खनी हिन्दी

(क) हिन्दी :

"हिन्दी" शब्द हिन्दी भाषा का या खड़ी बोली का नहीं है। प्रयोग तथा रूप की दृष्टि से "हिन्दवी" या हिन्दी शब्द फारसी भाषा का ही है। फारसी में "हिन्दी" का शब्दार्थ हिन्दी से सम्बन्धित रखनेवाला है। अतः शब्दार्थ की दृष्टि से "हिन्दी" शब्द का प्रयोग भारत में प्रयुक्त आर्य, द्रविड अथवा अन्य कुल की भाषा के लिए हो सकता है। लेकिन उस प्रकार का विस्तार अर्थ आजकल नहीं है। वास्तव में उसका व्यवहार उत्तर भारत की वर्तमान साहित्यिक भाषा तथा मध्य देश की उप-भाषाओं तथा उनसे सम्बन्धित प्राचीन साहित्यिक रूपों के अर्थ में साधारणतः होता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का कहना है – इस भूभाग की वर्तमान उप-भाषाएं जैसे मारवाड़ी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी, मैथिली आदि को तथा प्राचीन डिंगल, हिन्दवी, ब्रज, अवधी तथा मैथिली आदि साहित्यिक भाषाओं को भी हिन्दी भाषा के ही अन्तर्गत माना जाता है।*

भाषा शास्त्रीय आधार पर हिन्दी का तात्पर्य खड़ी बोली से होता है। हिन्दी खड़ी बोली का वह रूप है जो देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और अपने वृहत शब्द – भण्डार का निर्माण मुख्य रूप से सं. तत्सम अर्द्ध तत्सम और तद्भव शब्दों से करती है।"[2]

---

* हिन्दी भाषा का इतिहास – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा – पृ.59

2 खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास – ललित मोहन अवस्थी – पृ.79

संवैधानिक आधार पर हिन्दी का अर्थ सविस्तार बन जाता है । हिन्दी को संपूर्ण भारत के संघीय शासन की शासकीय पद प्राप्त हुआ है । साधारणत: इसे "राष्ट्र भाषा" की संज्ञा से अभिहित किया जाता है । इसके साथ-साथ हिन्दी कुछ राज्यों में सरकारी कामकाज की "राज्य भाषा" (State Language) भी है । जैसे - उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थानी, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश राज्य ।

(ख) खड़ी बोली :

साधारणत: हम "खड़ी बोली" किसी भी एक बोली या भाषा को कह सकते हैं जो खड़ी हो अर्थात् जीवित हो, समृद्ध हो, गौरव और श्री-सौन्दर्य हो । इस अर्थ में संसार की सभी वर्तमान भाषाएँ खड़ी बोली या खड़ी भाषा कही जा सकती हैं । किन्तु हिन्दी में "खड़ी बोली" शब्द रूढ़ एवं विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होता है । खड़ी बोली दिल्ली-मेरठ जनपद की वह मूल विभाषा है जो परिनिष्ठित रूप धारण कर आज संपूर्ण हिन्दी-भाषी प्रदेश की जातीय भाषा के रूप में हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी तीन शैलियों में बोलचाल तथा साहित्य में प्रचलित है । यह देवनागरी और फारसी लिपि में लिखी जाती हैं और भारतीय राष्ट्रभाषा के रूप में स्वरूप ग्रहण कर रही है । डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार - "खड़ी बोली या सरहिन्दी पश्चिमी रूहेलखण्ड, गंगा के उत्तरी दोआब तथा अंबाला जिले की उपभाषा है*।"साहित्यिक हिन्दी और उर्दू की मूलाधार भाषा खड़ी बोली मानते हुए डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं - "पश्चिमी हिन्दी मनुस्मृति के "मध्यप्रदेश" की वर्तमान भाषा कही जा सकती है । मेरठ तथा बिजनौर के निकट बोली जानेवाली पश्चिमी हिन्दी का

---

* हिन्दी भाषा का इतिहास - डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा - पृ॰ 64, संस्करण 1973

की एक रूप खड़ी बोली से वर्तमान साहित्यिक हिन्दी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है ।*

§ग§ हिन्दुस्तानी :

खड़ी बोली आज अपने तीन विभिन्न रूपों अथवा शैलियों में प्रचलित है - हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी । यद्यपि इन तीनों रूपों का आधार एक ही है - खड़ीबोली, फिर भी प्रत्येक भाषा की अपनी विशेषताएं हैं । उर्दू और हिन्दी दोनों ने अपनी साहित्य संपदा को अपनी स्वतंत्र पद्धतियों पर पृथक लिपियों में विकसित किया । लेकिन दोनों का बृहत शब्द-भण्डार सामीप्य रखता है । हिन्दुस्तानी इन दोनों के मध्य का मार्ग अनुसरण करती है । उर्दू एवं हिन्दी दोनों के बृहद् शब्द-भण्डारों के सरल, सुगम्य, बोधगम्य तथा सर्व-साधारण जनपद में प्रचलित शब्दों को लेकर दोनों ही लिपियों में § देवनागरी - फारसी § लिखी जाती है । उपर्युक्त तीनों भाषाओं की पद-संपदा §संज्ञा, सर्वनाम, क्रियापद, अव्यय आदि§ व्याकरण का ढांचा एक समान होने के कारण बोलचाल के रूपों में हिन्दुस्तानी, उर्दू और हिन्दी के लिखित भेदों को बहुत कुछ समाप्त कर देती है । इसलिए हिन्दुस्तानी बोलचाल के रूप में संपूर्ण भारत में प्रचलित है ।

हिन्दुस्तानी अभिधान यूरोपियन लोगों द्वारा व्यवहृत किया गया है । सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार - "हिन्दुस्तानी को हम खड़ी बोली का वह रूप मान सकते हैं जिसकी शब्दावली में उर्दू तथा नागरी हिन्दी दोनों की शब्दावलियों का सुष्ठ समन्वय रखा गया है ।"[2]

---

* हिन्दी भाषा का इतिहास - डा॰ धीरेन्द्र वर्मा - पृ॰56

2 भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डा॰ सुनीति कुमार

भारत भाषा सर्वेक्षण में सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है - "हिन्दुस्तानी मुख्य रूप से उत्तरी दोआब की भाषा है, साथ ही यह भारत की राष्ट्रभाषा भी है । यह फारसी तथा नागरी, दोनों ही लिपियों में लिखी जा सकती है तथा बिना किसी त्रुटि के ही, फारसी तथा संस्कृत शब्दों की अत्यधिक बहुलता को बचाते हुए साहित्य में भी इसका प्रयोग हो सकता है ।" *

अतः हिन्दुस्तानी का एक राष्ट्रीय आधार है । वह राष्ट्रीय एकता की भाषा है । हिन्दुस्तानी के सर्व प्रमुख प्रचारक राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी जी ने समन्वयवादी एवं एकता समर्थक विचारों से एक बार हिन्दुस्तानी की व्याख्या करते हुए "हरिजन सेवक" में 8 फरवरी सन् 1942 को लिखा था -

"हिन्दी + उर्दू = हिन्दुस्तानी नहीं है, बल्कि
हिन्दुस्तानी = हिन्दी = उर्दू ।"[2]

[घ] <u>उर्दू :</u>

उर्दू शब्द मूलतः तुर्की शब्द है । इसका मूल अर्थ होता है - प्रधान व्यक्ति का डेरा या निवास स्थान जो तंबू में हो । उर्दू के संबंध में, डा॰ धीरेन्द्र वर्मा का कथन है - "उर्दू शब्द मूलतः तुर्की भाषा का है ..... भारत में यह संभवतः बाबर के साथ आया । शाही शिविर या शाही किले के अर्थ में सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ । किन्तु आज इस शब्द का प्रयोग पाकिस्तानी राज भाषा के लिए तथा भारत वर्ष में हिन्दी के उस दूसरे रूप के लिए होता है जो भारत के शिक्षित

---

* भारत भाषा सर्वेक्षण - खण्ड - 1, भाग - 1, सरजार्ज ग्रियर्सन्
अनुवादक : उदयनारायण तिवारी, पृ॰30

2 राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी - महात्मा गांधी - पृ॰139

मुसलमानों की साहित्यिक और सांस्कृतिक भाषा है ।" " सर जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार - "उर्दू, हिन्दुस्तानी का वह रूप है जो फारसी लिपि में लिखा जाता है तथा जिसमें फारसी अरबी शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक व्यवहृत होते हैं ।"[2]

उर्दू का मूलाधार दिल्ली के निकट की खड़ी बोली है । उर्दू की उत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है । लेकिन "उर्दू" साहित्य में प्रयोग दक्षिण के सूफी कवियों और मुसलमान दरबारों से आरंभ हुआ । दक्षिण में प्रयुक्त उर्दू को दक्खिनी के नाम से भी अभिहित किया जाता है । उर्दू क्षेत्र की ओर संकेत करते हुए डा० सैय्यद मुहीउद्दीन कादरी लिखते हैं - "उर्दू और उसका साहित्य बहमनी शासन की छत्र छाया में सारे दक्कन अर्थात् अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक प्रचलित हुआ था और इस विशाल देश में स्थान स्थान पर कई केन्द्र बने, जिन में गुलबर्गा, बिदर, कंधार, गोगी, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुण्डा, कर्नूल, कड़पा, वेल्लोर, मद्रास, बोधन, औरंगाबाद आदि को उर्दू साहित्य के इतिहास में स्मृति चिरस्थाई रहेगी ।"[3]

दक्षिण में उर्दू साहित्य विस्तृत रूप से विकास होने के पश्चात् उर्दू में फारसीकरण अधिक होने लगा तथा साथ ही साथ उर्दू का विकास उत्तर भारत में होने लगा ।

अस्तु, भाषा स्वरूप की दृष्टि से देखा जाये तो उर्दू हिन्दी से पृथक नहीं है । दोनों एक ही माँ की बेटियाँ हैं, दोनों का आधार खड़ी बोली है । तत्वतः दोनों एक ही है क्योंकि व्याकरणिक दृष्टि से

• हिन्दी साहित्य कोश - प्रधान सम्पादक - डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 164

2 भारत भाषा सर्वेक्षण - खण्ड - 1, भाग-1, सर जार्ज ग्रियर्सन्, अनुवादक - उदयनारायण तिवारी, पृ० 304

एक ही है । हिन्दी और उर्दू का अन्तर बोलचाल और सामान्य जन भाषा के रूप में नहीं है, बल्कि लिखित रूप में एवं साहित्य में ही है । पृथकता सिर्फ लिपि में पाई जाती है ।

(ङ) दक्खनी हिन्दी :

भाषा स्वरूप की दृष्टि से "दक्खनी हिन्दी" हिन्दी की बोलियाँ अवधी, हरियाणवी, ब्रज, पंजाबी, बांगरू आदि के मिश्रित प्रभाव को लेकर दक्षिण में उभरी भाषा है । उसके बाद अन्य प्रान्तीय भाषिक रूपों का भी मिश्रण हुआ । इस सम्बन्ध में ललित मोहन अवस्थी का कथन है - "दक्षिण में पहुँचकर यह "दक्खनी" कहलाई और उसमें पर्याप्त साहित्य रचना का कार्य हुआ । यह प्रक्रिया 14वीं-15वीं शताब्दी में ही संपन्न हुई जब तक कि उत्तर भारत में खड़ीबोली में साहित्य रचना की परम्परा का आरंभ भी नहीं हुआ था ।" * दक्खनी हिन्दी भाषा स्वरूप के सम्बन्ध में डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी लिखते हैं - "16वीं शती का अन्त होते न होते ही दक्षिण के उत्तर भारतीय मुसलमान, हिन्दू शैली में हिन्दी देशज शब्दों में तथा अधिकांश संस्कृत एवं प्राकृत शब्दों वाली भाषा में धार्मिक कविता की रचना करने लगे थे । वह सारा साहित्य बिलकुल हिन्दू परम्परा का उसी प्रकार अनुसारी था जैसे उत्तर भारत में आरंभिक अवधी भाषा में रचित मलिक मुहम्मद जायसी का "पद्मावत" ।[2] भाषिक संरचना की दृष्टि से दक्खनी हिन्दी खड़ीबोली से अलग नहीं है । डा॰ भोलानाथ तिवारी दक्खनी हिन्दी को हिन्दी का ही एक रूप मानते हैं ।[3] साहित्यिक दक्खनी हिन्दी में खड़ी बोली की समीपता और सारूप्यता के उदाहरण आलोचकृतियों में मिलते हैं -

---

* खड़ी बोली हिन्दी का सामाजिक इतिहास - ललित मोहन अवस्थी, पृ॰215

2 भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी - डा॰ सुनीति कुमार चटर्जी, पृ॰212

3 हिन्दी भाषा - डा॰ भोलानाथ तिवारी - पृ॰235

"कबक रात निर्मल थी उस दिन की रात
चमकते थे बूर्यां में सब धात धात
निकल आये कर चांद तार्यां सिते
चमकता अक्बार अथा जग मगार्यां सिते ।"[1]

"घरे घर अनन्द सुख संपूर था,
खल्क शाद सब मुल्क मामूर था ।"[2]

"सदा राज कर धौर जी जग में जम,
सदा पाक आशिक़ तूं साबित क़दम।"[3]

दक्खनी हिन्दी में खड़ी बोली का रूप सिर्फ पद्य काव्य में ही नहीं गद्य काव्य में भी दिखाई देता है । निम्न गद्यांश में अरबी फारसी युक्त खड़ीबोली का गद्यात्मक रूप द्रष्टव्य है -

"अकल नूर है; अकल की दौड़ भोत दूर है । अकल ही अदमी कहवाती । अकल से खुदा कूं पाये । अकल अच्छे तो तमीज़ करे । भला हौर बुरा जाने । अकल अच्छे अकल आछे तो अपस कूं अकल ते बादशाह अकल ते वज़ीर ।"[4]

इसी प्रकार दक्खनी हिन्दी की नाटकीय भाषा को परखें तो संस्कृत निष्ट खड़ीबोली का रूप दिखाई देता है - "अभी मुझे इसने अभिप्राय क्या है? मैं सदा श्रीराम चन्द्र महाराज जी के पवित्र चरित्र कू पठन करते मानस में सबकाल की वह महानुभाव के सत्कृत्यों कू अभिवर्णन

---

* सैफ़ुल मुलूक व बदीउल जमाल : गवासी-संपादक : राजकिशोर पाण्डे :पृ.46
2 क़ुतुब मुश्तरी - मुल्ला वजही - संपादक - विमला वाघ्रे - पृ.123
3 क़ुतुब मुश्तरी - मुल्ला वजही - संपादक - विमला वाघ्रे - पृ. 75
4 सबरस - मुल्ला वजही - संपादक - श्रीराम शर्मा - पृ.15

करते रहने सरीखे आनंद पाते रहूँगा ।" *

उपरोक्त विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी खड़ी बोली से मेल खाती है तथा उक्त विवरण से दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी, खड़ी बोली, हिन्दुस्तानी और उर्दू शब्दों के मूल अर्थ और भाषा वैज्ञानिक शास्त्रीय अर्थ का भेद स्पष्ट हो गया है । क्षेत्रीय भेद को भी कुछ हद तक देखा गया है । अतः कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू भाषा का मूलाधार खड़ीबोली ही है । इस प्रकार उपरोक्त भाषाओं का सम्बन्ध एक दूसरे से घनिष्ठ है ।

1.6. हिन्दी में दक्खिनी हिन्दी का स्थान :

दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी का ही एक रूप है । दक्खिनी हिन्दी को डा॰ ग्रियर्सन् ने उर्दू [जो हिन्दुस्तानी की ही एक शैली है] का एक रूप कहा है ।[2] लेकिन दक्खिनी हिन्दी के विकास का आधार खड़ीबोली मानी जा सकती है । उस समय उत्तर भारत में फारसी का प्रभाव अधिक होने के कारण वहाँ देशी भाषा को पनपने का कम अवसर प्राप्त हुआ, अगर मिला भी तो फारसी की छत्र छाया में । हिन्देतर क्षेत्र दक्षिण में फारसी का प्रभाव अधिक नहीं रहा । इस कारण से यहाँ देशी भाषा का अधिक विकास हुआ तथा राजभाषा का स्थान भी प्राप्त

---

* श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक - संपादिका - श्रीमती के. शारदा - पृ.19

2 Literary Hindustani Proper, employed chiefly by Musalmans and by Hindus who have adopted the Muslmanis system of education and a modern development, called Hindi, employed only by Hindus, who have been educated in a Hindu system. Urdu itself has two varieties, the standard literaryform of Delhi and Lucknow and Dakhini. Spoken and used as a literary medium by musalmans of South India.

किया । अतः कह सकते हैं कि दक्खिनी हिन्दी विशेष रूप से दक्षिण प्रान्त में हिन्दी के विकास में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है । हिन्दी बोलियों के अन्तर्गत डा॰ हरदेव बाहरी ने पश्चिमी हिन्दी के आकारबहुल शाखा में दक्खिनी हिन्दी को स्थान दिया है । निम्न तालिका में दक्खिनी हिन्दी के स्थान को देखा जा सकता है -*

क्रमशः ...

---

* हिन्दी उद्भव, विकास और रूप - डा॰ हरदेव बाहरी - पृ.72

- हिन्दी बोलियाँ
  - पूर्वी खण्ड
    - पूर्वी हिन्दी
      - अवधी
      - बघेली
      - छत्तीसगढ़ी
    - बिहारी हिन्दी
      - भोजपुरी
      - मगही
      - मैथिली
  - पश्चिमी खण्ड
    - पश्चिमी हिन्दी
      - आकार बहुल
        - कौरवी
        - हरियाणवी
        - दक्खिनी
      - ओकार बहुल
        - ब्रजभाषा
        - बुंदेली
        - कन्नौजी
    - राजस्थानी हिन्दी
      - मारवाड़ी
      - जयपुरी
      - मेवाती
      - मालवी
    - पहाड़ी हिन्दी
      - कुमाऊंनी
      - गढ़वाली

प्रो. दीपचन्द्र जैन जी ने हिन्दी की पाँच प्रमुख उपभाषाओं को माना है ।*

---

* हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ - प्रो. दीपचन्द्र जैन : पृ.50

- हिन्दी
  - पश्चिमी हिन्दी
  - राजस्थानी हिन्दी
  - पूर्वी हिन्दी
  - बिहारी हिन्दी
  - पहाड़ी हिन्दी

इन्होंने दक्खिनी हिन्दी को पश्चिमी हिन्दी की प्रमुख बोलियों के अन्तर्गत स्थान दिया है । इन्होंने पश्चिमी हिन्दी के छः बोलियों को माना है -

- पश्चिमीहिन्दी
  - खड़ी बोली या कौरवी
  - हरियानी या बांगरू
  - दक्खिनी
  - ब्रज भाषा
  - कन्नौजी
  - ब

2. दक्खिनी हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास :

भारत जैसे सुविशाल भूखण्ड में कई महत्वपूर्ण भाषायें हैं, जो प्रयोग तथा साहित्यिक दृष्टि से महान हैं । लेकिन न किन्हीं कारणों से उनके सम्बन्ध में व्यवस्थित शोध कार्य नहीं हो पाया है । दक्खिनी हिन्दी भी उनमें से एक है । फिर भी कुछ विद्वान् दक्खिनी हिन्दी साहित्य की खोज में रत रहे तथा कुछ विद्वानों ने दक्खिनी हिन्दी साहित्य के इतिहास का निर्माण करने का प्रयत्न भी किया है । क्रम तथा वर्गीकरण की दृष्टि से दक्खिनी हिन्दी साहित्य का इतिहास अधूरा ही माना जा सकता है । साहित्य के विकास क्रम का अध्ययन करने के लिए साहित्य इतिहास का काल विभाजन की आवश्यकता है ।

2.1. काल विभाजन :

दक्खिनी हिन्दी साहित्य इतिहास का काल विभाजन कुछ विद्वानों ने समय के आधार पर, कुछ विद्वानों ने ऐतिहासिक घटनाओं को दृष्टि में रखकर राजकीय शासन को आधार मानकर किया है । सब विद्वानों ने दक्खिनी साहित्य इतिहास को सन् 1850 तक ही माना है । लेकिन आधुनिक काल में [सन् 1884-1886] सृजित दक्खिनी हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक रचनायें तथा अत्याधुनिक काल में सृजित कुछ रचनायें प्राप्त होने के कारण हम दक्खिनी हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भी देख सकते हैं ।

पंडित राहुल सांकृत्यायन ने सर्वप्रथम दक्खिनी हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया है । उनके अनुसार यह तीन कालों में

विभक्त है - [1]

आदिकाल 1400 - 1500 ई.
मध्यकाल 1500 - 1657 ई.
उत्तरकाल 1657 - 1840 ई.

पंडित राहुल सांकृत्यायन का काल विभाजन समयाश्रित है । इसमें काव्य शैली और भाषा के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया है ।

डा॰ धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित "हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास" में दक्खिनी हिन्दी साहित्य इतिहास का एक और विभाजन मिलता है, जो राजकीय शासन की स्थिति पर आधारित है ।[2]

बहमनी युग ... 1347 - 1524 ईसवी
आदिलशाही, कुतुबशाही युग 1490 - 1687 ईसवी
मुगल युग ... 1687 - 1722 ईसवी

दक्खिनी हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा॰ श्रीराम शर्मा जी "दक्खिनी हिन्दी का साहित्य" में पूरे साहित्य इतिहास को तीन खण्डों में देखा है -[3]

प्रथम खण्ड 1300 - 1600 ईसवी
द्वितीय खण्ड 1600- 1675 ईसवी
तृतीय खण्ड 1700 - 1850 ईसवी

---

1 दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा - पं॰ राहुल सांकृत्यायन - पृ॰7
2 हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास - प्रधान संपादक - डा॰धीरेन्द्रवर्मा, [द्वितीय खण्ड] पृ॰360
3 दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डा॰ श्रीराम शर्मा

डा॰ श्रीराम शर्मा जी ने सन् 1300 से 1850 तक मुद्रित दक्खिनी हिन्दी साहित्य का सर्वांगीण परिचय प्रस्तुत किया है। प्राप्त रचनाएं तथा भाषा के विकास को दृष्टि में रखकर पूरे साहित्य इतिहास को तीन काल खण्डों में विभक्त किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर काल निर्धारण किया है। उन्होंने प्रथम खण्ड में निर्गुण भक्ति साहित्य, सूफी साहित्य, आख्यानक काव्य भावात्मक काव्यों का और कवियों का परिचय दिया है। भक्ति साहित्य के अन्तर्गत गोरखनाथ, नामदेव, गोंडाचार्य, एकनाथ के साहित्य को भी सम्मिलित किया है। द्वितीय खण्ड में कथात्मक काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, गुज़ल, कसीदा, मर्सिया आदि का परिचय दिया है। तृतीय खण्ड में भाव कविता, कथात्मक काव्यों की चर्चा की है। श्रीराम शर्मा जी का काल विभाजन युक्त संगत लगता है।

डा॰ परमानन्द पांचाल जी ने "दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास" * में अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दक्खिनी हिन्दी साहित्य के इतिहास को तीन काल खण्डों में विभक्त किया है। इस विभाजन के अन्तर्गत उन्होंने प्रवृत्तिगत निरूपण के स्थान पर रचना विवरण पद्धति को प्रधानता दी है। इसमें प्राप्त रचनाओं का सामान्य परिचय भी दिया गया है।

प्रारंभिक काल	1300 – 1490 ईसवी
मध्य काल	1491 – 1687 ईसवी
उत्तर काल	1688 – 1850 ईसवी

---

* दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास – डा॰ परमानन्द पांचाल – पृ॰ 78

उपरोक्त विभिन्न विद्वानों द्वारा किया गया दक्खिनी हिन्दी साहित्य इतिहास का काल विभाजन से यह बात होता है कि विद्वानों ने दक्खिनी साहित्य की सृजन प्रक्रिया को 1850 ईसवी तक ही माना है। लेकिन दक्खिनी हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को भी देखा जा सकता है। उपरोक्त विवरण को दृष्टि में रखकर दक्खिनी हिन्दी साहित्य इतिहास काल विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है -

आदिकाल 1300 - 1500 ईसवी
मध्यकाल 1500 - 1700 ईसवी
उत्तर काल 1700 - 1850 ईसवी
आधुनिक काल 1850- आजतक

विभिन्न कालों में सृजित साहित्य तथा साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय यहाँ असमीचीन न होगा।

2.1.1. आदिकाल ॥ 1300 - 1500 ईसवी ॥ :

ख्वाजा बन्देनवाज गेसू दराज - ॥ 1332 - 1437 ईसवी ॥ दक्खिनी हिन्दी के प्रथम लेखक माने जाते हैं। इन्होंने अरबी फारसी में उत्तर भारत में रहकर अनेक रचनाएँ की। दक्षिण में आकर दक्खिनी हिन्दी में भी रचनाएँ की हैं। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों में "मेराजुल आशकीन", "हिदायत नामा", "रिसालतुलवजूद", "शिकारनामा", और रिसाला "सहबारह", तथा "दुल्म इसरार" विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। निजामी बीदरी - ये सुलतान अहमद शाह तृतीय ॥1460 - 62 ईसवी ॥ के दरबारी कवि थे। इनकी एक मसनवी "कदमराव व पदमराव" प्रसिद्ध है। यह एक प्रकार से दक्खिनी हिन्दी का प्रथम चरित काव्य है।" *

---

* हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड - संपादक - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा - पृ.562

शाह मीराँजी शम्सुल उश्शाक* ॥ मृत्यु 1496 ईसवी ॥ - ये सूफी कवि थे । इनकी प्रमुख रचनाएं हैं - "खुशनामा", "खुशनग्ज़", "शिकारतुलजिक्र", "माजेमरगूब" व "वसार शहादत", और "शहादतुल हकीकत" ।

कुरैशी [2] मुहम्मदशाह बहमनी ॥ 1482 - 1520 ईसवी ॥ के शासन काल के कवि थे । इनकी प्रसिद्ध रचना है - "भोगबल" ।

लुत्फी, सदरुद्दीन, अब्दुल्ला हुसैनी मुश्ताक, बाजरी आदि उल्लेखनीय कवि इस काल में हुए थे ।

2.1.2. मध्य काल ॥ 1500 - 1700 ईसवी ॥ :

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में मध्यकाल "स्वर्णयुग" कहलाता है, उसी प्रकार दक्खिनी हिन्दी साहित्य इतिहास का मध्यकाल भी "स्वर्णयुग" कह सकते हैं । दक्खिनी हिन्दी साहित्य का विस्तृत सृजन कार्य इसी युग में हुआ है । इस युग के प्रमुख साहित्य रचनाकार हैं -

शाह अशरफ - ॥ मृत्यु 1529 ई. ॥ :

निजामशाही शासन काल के प्रसिद्ध कवि थे । कुछ विद्वान् इन्हें बीजापुर के निवासी मानते हैं तो कुछ लोग इन्हें अहमद नगर के निवासी । इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है - "नोसरहार" ।

बुरहानुद्दीन जानम - ॥ 1554 - 1583 ई. ॥ :

ये शाह मीराँजी के पुत्र थे । इनका जन्म बीजापुर में हुआ था ।

---

* दक्खिनी हिन्दी का विकास और इतिहास - डा. परमानन्द पांचाल - पृ.83

2 - वही -

इनकी प्रमुख रचनाएं हैं - "इर्शादनामा", "सुखसहेली", "वसीयतुल हादी", "मुनफतुल ईमान", "हुज्जतुल बका", "कुलनामा", "पंच गंज", "बिशारतुल जिक्र" आदि ।

इब्राहीम आदिलशाह (1580 - 1623 ई०) :

आदिलशाही राज्यवंश के छटे सुलतान थे । वे संगीत और साहित्य प्रेमी थे । इनकी एक प्रसिद्ध रचना है - "नवरस" ।

अब्दुल :

इब्राहीम आदिलशाह शासन काल का प्रसिद्ध कवि था । इन्होंने एक दक्खिनी हिन्दी की प्रतिनिधि रचना - "इब्राहीमनामा" 1604 ईसवी में की थी ।

फिरोज :

बीदर के निवासी थे । इनकी रचना "पिरतनामा" प्रसिद्ध है ।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह : (1571 - 1611 ई०) :

गोलकुण्डा के कुतुबशाही वंश में जन्म लिए थे । इनकी एकमात्र प्रसिद्ध रचना "कुल्याते मुहम्मद कुली कुतुबशाह" उपलब्ध है ।

अमीनुद्दीन आला (मृत्यु 1575 ई०) :

ये शाह बुरहानुद्दीन के सुपुत्र थे । इनकी रचनाएं - "मुहब्बतनामा", "रम्जस्सालकीन" है ।

मुल्ला वजही :

ये कुतुबशाही शासन काल के प्रसिद्ध रचनाकार थे । इन्होंने पद्य और गद्य दोनों रूपों में रचनाएं की हैं । इनकी रचनाएं हैं -

"कुतुबमुश्तरी" और "सबरस" ।

मुल्ला गवासी :

ये भी कुतुबशाह के शासनकाल में हुए थे । इनकी रचनाएँ " सैफलमुलूक व बदीउल जमाल", "तूतीनामा" और मैनासतवन्ती हैं ।

नुसरती :

आदिलशाही शासन काल में ये दरबारी कवि थे । इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - "गुलशने इश्क" [1657 ई॰], "अलीनामा" [1666 ई॰], "तारीखे सिकन्दरी" [1670 ई॰] ।

बहरी [1620 - 1718 ई॰] :

इनका जन्म गोगी [गुलबर्गा जिला] में हुआ था । इनकी रचनाएँ हैं - "मनलगन" [1702 ई॰], "बंगाबनामा", "गजल संग्रह" ।

सैयदमीरां हाशमी :

ये एक अच्छे कवि थे । इनकी प्रसिद्ध मसनवी है - "यूसुफ जुलेखा" [1688 ई॰] ।

इब्ने निशाती :

अब्दुल कुतुब शाह के दरबारी कवि थे । इनकी रचना "फूलबन" प्रसिद्ध है ।

अबुल हसन [तानाशाह] ; आरिफ, लतीफ, फताही, नूरी, सालिक, गुलाम अली, जुनेदी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय साहित्यकार हैं ।

2.1.3. उत्तरकाल [1700 - 1850 ई.] :

ऐतिहासिक दृष्टि से इस समय में दक्खनी हिन्दी को राजाश्रय नहीं प्राप्त हुआ था । 1687 ईसवी तक औरंगजेब ने गोलकुण्डा तथा बीजापुर को अपने अधीन कर लिया था । इस कारण से दक्षिण के मुस्लिमन राज्यों का पतन हुआ । लेकिन करीब 350 वर्षों से प्रवाहित होनेवाली दक्खनी हिन्दी साहित्यिक धारा ने तुरन्त कोई परिवर्तन नहीं पाया । चाहे विस्तृत साहित्य रचना नहीं की गयी हो, लेकिन साहित्य प्रेमी अपनी रचनाएं करते रहें । साहित्य सृजन विस्तार से नहीं हो पाने के कारण इस युग को "मंदयुग" कहा जा सकता है । बीजापुर और गोलकुण्डा के पतन के बाद भी कुछ साहित्यकार अपने रचनाओं को जनता तक पहुँचाने में लगे रहें ।

प्रमुख कवि :

वली [1668 - 1741 ई.] :

जैसे-जैसे दक्खनी हिन्दी का प्रशस्त मार्ग उर्दू की ओर झुकने लगा वैसे साहित्यकार भी रचनाओं में नई शैली अपनाने लगे । इसीलिए वली को उर्दू के प्रथम शायर मानते हैं । इनके साहित्य सृजन में - गज़ल, कसीदा, मसनवी, रुबाई, तरजीबन्द आदि काव्य रूप उल्लेखनीय है ।

शाह तुराब - [जन्म 1104 - 1105
हिजरी के आसपास] *

इनका असली नाम तुराब अली था । शाह तुराब, तुराब शाह के नामों से ख्यात हैं । शाह तुराब मद्रास के तिरुनामल नामक स्थान के

---

* मन समझावन - शाह कवि तुराब - संपादक - डॉ. विद्यासागर - व्यक्तित्व और कृतित्व - पृ.5

निवासी थे । इन्होंने अनेक रचनाएं की थी – "ज़ुहूर कुल्ली", "गंजुल असरार", "गुलजारे वहदत्त", "ज्ञानस्वरूप", "आइने-ए-असरत", मसनवी" महजबीन -ओ- मुल्ला" और मनसमझावन ।

वली वेलूरी :

ये मद्रास के वेलूर के निवासी थे । इनकी रचना है – "रोजतुश्शोहदा (1718 ई.) ।

उपरोक्त कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कलाकार हैं – हातिम, वजदी, दरिया, महबूब आलम, इसरती, सिराज आदि । अतः कहा जा सकता है कि यह साहित्य रचना क्रम जारी रहा । यहाँ उल्लेखनीय है कि यह क्रम अविरल रूप से तब तक चलता रहता रहा जब तक उत्तर में 18वीं शती के प्रथम चरण में उर्दू का नया स्रोत दक्खिनी की ओर प्रवाहित नहीं हुआ ।" *

2.1.4. आधुनिक काल (1850 ई. से आजतक) :

वैसे तो इस समय तक दक्खिनी हिन्दी की रचनाएं खत्म हो चुकी थीं । लेकिन दक्खिनी हिन्दी का रूप मौजूद था । आवश्यकता अविष्कार की जननी है । इस उक्ति के अनुसार जब लोगों को चाह हुई कि दक्खिनी हिन्दी में कुछ नाटक लिखे जाये, तो लोगों की प्रेरणा से तथा उनकी इच्छा पूर्ति की दृष्टि से तेलुगु भाषी श्री पुरुषोत्तम जी ने दक्खिनी हिन्दी के 32 नाटकों की रचना सिर्फ दो साल के समय में (1884-1886 ई.) की । लेकिन दुर्भाग्यवश सभी नाटक प्राप्त नहीं है । पूर्ण रूप से 6 नाटक प्राप्त हैं और कुछ नाटकों के अंश मात्र । अत्याधुनिक काल में भी दक्खिनी की रचनाएं हो रही हैं । गुलबर्गा के सुलेमान खतीब का

---

* हिन्दी साहित्य – संपादक – डा. धीरेन्द्र वर्मा – पृ.560

एक काव्य संग्रह "केवड़ा बन" नागरी लिपि में प्रकाशित है । आज की दक्षिण की उर्दू रचनाओं में भी दक्खनी हिन्दी भाषा के स्वरूप का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है ।

उपरोक्त दक्खनी हिन्दी साहित्य के संक्षिप्त विवेचन के बाद इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि दक्खनी हिन्दी भी हिन्दी का ही एक ऐसा रूप है, जैसे ब्रज, अवधी, राजस्थानी आदि । यहाँ विश्व विख्यात भाषा वैज्ञानिक डॉ॰ सुनीति कुमारी चटर्जी का विचार उल्लेखनीय है – "इस साहित्य शैली का शाब्दिक, तात्त्विक तथा विषयक ढाँचा उत्तर भारत के समस्त साहित्य जैसा ही था । इसके शब्द, अधिकतर शुद्ध हिन्दी या संस्कृत तत्सम अथवा अर्द्ध तत्सम ही थे .... इसलिए दक्खनी साहित्य को हम असंदिग्ध रूप में शुद्ध हिन्दी का ही अंग समझ सकते हैं ।"*

5. दक्खनी हिन्दी : विकास और भाषा का इतिहास :

भारतीय इतिहास से पता चलता है कि सन् 1327 ईसवी में राजनीतिक महत्त्व की दृष्टि से मुहम्मदबीन तुगलक ने दक्षिण में अपनी राजधानी दौलताबाद को बनाई ।[2] इस कारण से अनेक नागरिक सैनिक, विद्वान्, व्यापारी लोग और कर्मचारियों को दिल्ली छोड़कर दौलताबाद आना पड़ा । लेकिन जब फिर सन् 1329 में तुगलक ने अपनी राजधानी बदलकर दिल्ली को सब लोगों को लौटने के लिए आदेश दिया तो अनेक लोग दिल्ली लौट गये साथ-साथ अनेक परिवार दक्षिण में

---

* दक्खनी का पद्य और गद्य – संपादक – डॉ॰ श्रीराम शर्मा – भूमिका – डॉ॰ सुनीति कुमार चटर्जी – पृ॰ 6

2 A very important experiment was made by the Sultan Muhammad-Bin-Tughluq in shifting his capital from Delhi to Daulatabad.

— History of India- Chapter IX : P. 181

ही स्थिर हो गये । जो लोग दक्षिण में स्थिर हो गये थे उनकी भाषा मिश्रित भाषा थी । इसमें ब्रज, अवधी, पंजाबी, हरियाणवी आदि के भाषिक रूप थे । जब ये लोग दक्खन में बसने लगे तो उनकी दैनिक जीवन व्यवहार में कठिनाई होने लगी । तदर्थ इन लोगों ने दक्षिण की भाषाएं तेलुगु, मराठी, कन्नड़ की शब्दावली एवं रूपात्मक प्रभावों के साथ एक नई भाषा को जन्म दिया, जो भाषागत विकास में स्वाभाविक और सहज है । यह भाषा बाद में दक्खन लोगों के द्वारा भी व्यवहृत होने लगी । इसीलिए यह भाषा दक्खिनी या दक्नी कहलाई । इस समय तक दक्षिण भारत में ईरान, अरब देशों से भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे, तत्परिणाम स्वरूप अरबी, फारसी शब्दों का भी प्रवेश दक्खिनी हिन्दी में पर्याप्त मात्रा में होने लगे । सन् 1347 में बहमनी राज्य स्थापना से दक्खिनी हिन्दी पर अब अरबी, फारसी का और गहरा प्रभाव पड़ा । इस प्रकार इस भाषा का उद्भव हुआ और विकसित होकर इसमें साहित्यिक रचनाएं होने लगी । गोलकुण्डा शासन काल तक पहुंचते पहुंचते इस भाषा ने एक स्थिर रूप ग्रहण किया और आदिलशाही शासन काल में राजभाषा का पद भी प्राप्त किया ।

3.1. दक्खिनी हिन्दी भाषा का इतिहास – काल विभाजन

इसमें सन्देह नहीं है कि दक्खिनी हिन्दी का उद्भव हिन्दी की बोलियों से हुआ है और दक्षिण भारत में दक्षिण की भाषाओं (मराठी, तेलुगु, कन्नड़) से प्रभावित होकर, अरबी, फारसी के संपर्क में उसका रूप और भी [illegible] निखरा है । यों तो दक्खिनी हिन्दी के कुछ रूप खड़ी बोली, ब्रज, अवधी, पंजाबी से भी मिलते हैं । दक्खिनी हिन्दी के

विकास का इतिहास आज तक कुल लगभग सात सौ वर्ष का (1300 - 1980 ईसवी) मिलता है । ऐतिहासिक घटनाएँ, प्राप्त रचनाएँ तथा साहित्यकारों के समय के आधार पर दक्खिनी हिन्दी भाषा इतिहास का काल विभाजन किया जा सकता है । दक्खिनी हिन्दी साहित्यिक कृतियों में प्रयुक्त भाषा के आधार पर भाषा विकास की स्थितियों का भी विशेष विवरण दिया जा सकता है । यहाँ काल विभाजन तथा विकास का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है । विकास की दृष्टि से इस भाषा के इतिहास को पाँच काल-खण्डों में बाँटा जा सकता है -

1 संक्रान्तिकाल 1300 से 1347 ईसवी
2 आरम्भिक काल 1347 से 1487 ईसवी
3 उन्नतिकाल 1487 से 1687 ईसवी
4 अवनतिकाल 1687 से 1750 ईसवी
5 आधुनिक काल 1750 से आज तक

3.1.1. संक्रान्तिकाल (सन् 1300 से 1347)

मुहम्मदबीन तुगलक के राजधानी परिवर्तन की ऐतिहासिक घटना से उत्तर भारत के लोगों का दक्षिण में अपनी भाषाओं के साथ आना हुआ । उन्होंने अपनी भाषाओं के साथ दक्षिण में स्थित भाषाओं के शब्द जोड़कर एक नई भाषा को जन्म दिया । वह सचमुच मिश्रित भाषा थी, क्योंकि उस भाषा में अनेक मानक भाषाओं का मिश्रण था । इस प्रकार का मिला जुला रूप प्राप्त होने के कारण तथा उस समय तक कोई दक्खिनी हिन्दी की साहित्यिक कृति न प्राप्त होने के कारण इस काल को संक्रान्तिकाल कहा जा सकता है । इस काल तक भाषा स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि भाषा का कोई लिखित आधार नहीं है । केवल बोलचाल की भाषा होने के कारण भाषा स्वरूप का निर्धारण करना कठिन है ।

3.1.2. आरम्भिक काल [सन् 1347 से 1487] :

दक्षिण भारत में बहमनी राज्य की स्थापना सन् 1347 में हुई। इसी समय में सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों से, जो संक्रान्तिकाल में मिश्रित भाषा के रूप में प्रचलित थी उसके साथ अरबी, फारसी शब्द भी जुड़ने लगे। इस समय में दक्खिनी हिन्दी के प्रथम लेखक ख्वाजा बन्देनवाज गेसू दराज [सन् 1332 - 1447][*] ने अनेक दक्खिनी हिन्दी रचनाएँ की थी। गेसू दराज जी दक्षिण भारत अपने बचपन में आये थे। किन्तु पिता के देहान्त के कारण तुरन्त वे दिल्ली चले गये, उत्तर भारत में रहकर अनेक रचनाएँ की थी। सत्तर साल बाद फिर दक्षिण भारत में पहुँचकर बहमनी राज्य शासन काल में दक्खिनी में रचनाएँ की थी। इसी समय मीराँजी शम्सुल उश्शाक [मृत्यु 1499][2] ने दक्खिनी हिन्दी की पद्य और गद्य की रचनाएँ की थी। डॉ. श्रीराम शर्मा जी मीराँजी की भाषा सम्बन्ध में लिखते हैं - मीराँजी शम्सुल की भाषा विशुद्ध रूप से वह हिन्दी है, जो उनके समय में प्रचलित थी और जिसका प्रयोग नामदेव और अन्य सन्तों ने किया था।[3] निजामी बीदरी, कुरेशी, लुत्फी प्रमुख रचनाकार हैं।

इस काल में सृजित साहित्यिक भाषा स्वरूप में और हिन्दी खड़ी बोली साहित्य के आदि भाषा स्वरूप में कुछ समानताएँ दिखाई देती हैं। कतिपय उदाहरणों के आधार पर ये समानताएँ देखी जा सकती हैं :-

---

* दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा - पृ.95

2 दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास - डॉ. परमानंद पांचाल - पृ.8[illegible]

3 दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा - पृ.118

हिन्दी के कवि अमीर खुसरो की भाषा का एक नमूना है -

" उज्ज्वल बरन, अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान
खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एक रंग" *

दक्खिनी हिन्दी आरम्भिक काल के कवि लुतफे की भाषा है -

" लिखावट में सजन के मैं मोम की बत्ती हूँ
एक पाँव पर खड़ी हूँ जलने चिरत खड़ी हूँ
सब निस खड़ी जलूँगी जागा सूँ न हिलूँगी
न उस सों क्या करूँगी अकल हूँ गिर मतो हूँ"[2]

अमीर खुसरो की भाषा का और एक रूप -

" एक थाल मोती से भरा । सबके सिर पर औंधा धरा
चारों ओर वह थाली फिरे । मोती उससे एक न गिरे ।"[3]

दक्खिनी हिन्दी के कवि निजामी बीदरी की भाषा का रूप -

" आकास उँच पाताल धरती नहीं
जहाँ कुछ न कोई था है तुहीं"
...   .
भलाई कूँ भलाई करे कुछ न होय
बुरे कूँ भलाई करे होय सोय"[4]

---

* तथा 2 : हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल - पृ.52-53
3 तथा 4 : दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास -
डॉ. परमानन्द पांचाल - पृ.82-84

उक्त उदाहरणों में भाषा की व्यक्त संरचना और पद प्रयोग शैली में अवश्य मजबीकीपन मिलता है ।

3.1.3. उन्नतिकाल (सन् 1487 से 1687) :

इतिहास में कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं; जिनके कारण भाषा एवं साहित्य में भी परिवर्तन होता है । यही बात दक्खनी हिन्दी भाषा इतिहास में भी घटी है । सन् 1487 में बहमनी वंश के द्वारा दक्षिण भारत में राज्य स्थापना के पश्चात् अनेक मुस्लिम राज्यों की स्थापना होने लगी । इतिहास के अनुसार ये शासन हैं -

बी बदीरशाह शासन 1487 ईसवी (बीदर प्रान्त)
निजामशाही शासन 1490 ईसवी (अहमदनगर)
आदिलशाही शासन 1490 ईसवी (बीजापुर)
कुतुबशाही शासन 1512 ईसवी (गोलकुंडा, हैदराबाद)

उपरोक्त शासन काल में दक्खनी हिन्दी को राजाश्रय प्राप्त हुआ तथा भाषा का रूप भी निरन्तर निखर ने लगा । कुतुबशाही शासन काल में दक्खनी हिन्दी साहित्य विशेष रूप से सृजित हुआ । इस उन्नतिकाल की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा परिशीलन से यह कहा जा सकता है कि इस समय की रचनाओं में फारसीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है । शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी की बोलियों से आगत शब्द, अरबी, फारसी, मराठी, तेलुगु, कन्नड शब्दों का प्रयोग हुआ है । मुल्ला वजही और मुल्ला गवासी कुतुबशाही के राज्याश्रित थे । इस काल में रचित अनेक रचनाएँ उपलब्ध होने के कारण इस काल को उन्नतिकाल कहा गया है । इस उन्नति काल के प्रमुख रचनाकार हैं - बुरहानुद्दीन जानम (1544-1583(ई.), शाह अशरफ (1529 ई.मृत्यु)

अमीनुद्दीन आला (1974 ई. मृत्यु), इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (1580-1625 ईसवी) नुसरती (1674 ईसवी), मुहम्मदकुली कुतुबशाह (1566 ईसवी), मुल्ला वजही, मुल्ला गवासी, फिरोज आदि ।

इस काल की रचनाओं में अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, और स्वरों के अलावा ॠ और ए का प्रयोग मिलता है । शायद ये स्वर फारसी से आगत हैं । ॠ स्वर इसका का भी भाषाई प्रवेश हो चुका था । व्यंजनों में ख़, ग़, ज़, फ़ संघर्षी व्यंजन, न्ह, म्ह ध्वनियों का प्रयोग भी साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में हुआ है । इनके अलावा ड़, ढ़ जो अपभ्रंश में नहीं थे, हिन्दी में प्रयुक्त होने लगे, उसी तरह दक्खिनी हिन्दी में भी प्रयुक्त हुए है । डॉ. श्रीराम शर्मा जी के अनुसार - ड़, ढ़, ड़, ढ़, व्यंजनों का विकास भी दक्खिनी हिन्दी में हुआ है ।" *

3.1.4. <u>स्तब्ध काल (1687 - 1850 ईसवी)</u>

ऐतिहासिक दृष्टि से इस युग में दक्खिनी हिन्दी को राजाश्रय नहीं प्राप्त हुआ । सन् 1687 तक औरंगजेब ने गोलकुंडा और बीजापुर को अपने अधीन कर लिया था । इस कारण से दक्षिण में मुसलीम शासकों का राज्य पतन हुआ और दक्खिनी का आश्रय भी समाप्त हो गया । साहित्य सृजन की दृष्टि से यह काल महत्वपूर्ण नहीं है । इस काल में विशेष रचनाएं नहीं होने के कारण इस काल को "स्तब्ध काल" के नाम से अभिहित किया गया है । स्तब्ध काल का मतलब यह नहीं कि भाषा का रूप ही नहीं था, या रचनाएं ही नहीं हुई, बल्कि विशेष रूप से यह काल महत्व का नहीं माना जा सकता है ।

वैसे तो इस काल में भी कुछ साहित्यकार मिलते हैं । प्रमुख कवियों में बहरी, तुराब शाह के अतिरिक्त नूरी, जईफी, कादरी, वली,

वलीवेलूरी, मिराज, वजदी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । यह भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि इस समय की रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई हों । जब तक प्रमाणिक रचनाएँ प्राप्त नहीं होती तब तक इस काल को "स्तब्ध काल" के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा ।

3.1.5. आधुनिक काल (सन् 1850 – आजतक) :

आधुनिक काल में आकर दक्खिनी हिन्दी का संपर्क उर्दू भाषा से होने लगा और वह उर्दू की साँचे में ढलने लगी । स्तब्ध काल के अनन्तर सन् 1884-1886 में तेलुगु भाषी श्री पुरुषोत्तम जी ने दक्खिनी हिन्दी में 32 नाटकों की रचना की है । लेकिन दुर्भाग्यवश सभी नाटक प्राप्त नहीं हैं । फिर भी प्राप्त छः नाटकों को श्री पुरुषोत्तम जी की पोती श्रीमती के. शारदा जी ने देवनागरी लिपि में "श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक" नामक संग्रह को संपादित किया है । जो नाटक पहले तेलुगु लिपि में थे । तेलुगु लिपि में लिखे गये अन्य नाटकों का उल्लेख, तेलुगु नाटकों के विकास में श्री पी.एस.आर. अप्पाराव ने किया है । लेकिन उनकी प्राप्ति की सूचनाएँ नहीं मिलती, इस दिशा में अनुसंधान करने की आवश्यकता है ।

आधुनिक काल में जो साहित्य लिखा गया है, उसकी भाषा के अनुशीलन से यह कहा जा सकता है कि इसमें ऋ स्वर का विकास हुआ है, व्यंजनों में ङ., ण, ष, और श का विकास हुआ है । आधुनिक दक्खिनी हिन्दी साहित्य में अरबी, फारसी भाषा के शब्द कम हैं और संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्दों की प्रचुरता । आधुनिक काल में भी दक्खिनी हिन्दी की रचनाएँ की जा रही हैं । कवियों में सुलेमान खतीब,

कहानीकारों में पद्मनाभन हैं । इनके अलावा सखर दंडा, उल्लडो और हाली के नाम अत्याधुनिक काल में उल्लेखनीय हैं ।

अतः यह कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी भाषा में आरंभ काल से लेकर आधुनिक काल तक तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहे । आधुनिक काल में आकर ऐतिहासिक तथा राजनैतिक कारणों से दक्खिनी हिन्दी का स्थान उर्दू भाषा ने ग्रहण कर लिया है, फिर भी उर्दू भाषा में दक्खिनी का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है ।

भाषा विकास की दृष्टि से यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है कि दक्खन में दक्खिनी हिन्दी का विकास होने से पहले ही यहाँ [दक्खन में] पृष्ठभूमि बनी थी; क्योंकि दक्खिनी हिन्दी केन्द्र के समीपवर्ती क्षेत्र महाराष्ट्र में कुछ सन्त कवि हिन्दवी भाषा में रचना करते रहे । जिनमें ज्ञानेश्वर, नामदेव, गोंदाबाई तथा एकनाथ आदि उल्लेखनीय हैं । इस संदर्भ में डा० श्रीराम शर्मा जी का कथन है - "नामदेव से लेकर एकनाथ तक मराठी भाषा क्षेत्र में हिन्दी [दक्खिनी] में जो साहित्य लिखा गया, उसमें सगुण को कम स्थान मिला..... सब मिलाकर महाराष्ट्र में लिखी गयी दक्खिनी की रचनाओं पर निर्गुण छाया हुआ है ।"* दक्षिण में दक्खिनी हिन्दी के नाम से खड़ी बोली का विकास हुआ है । एक स्वाभाविक प्रश्न उभरता है कि उत्तर भारत से आयी हुई यह भाषा सुदूर दक्खन में क्यों विकसित हुई । इसके अनेक कारण हैं । दक्षिण में हिन्दू-मुस्लिम की एकता उत्तर की अपेक्षा कुछ अधिक पनपी है । अकबर से पूर्व ही बहमनी शासकों ने हिन्दू महिलाओं से विवाह किया । बीजापुर और गोलकुण्डा के शासकों ने भी इसका

---

* दक्खिनी हिन्दी का साहित्य - श्रीराम शर्मा - पृ०80

अनुकरण किया । इतिहास इसका साक्षी है । इस प्रकार भिन्न संस्कारों का और भाषाओं का मेल होना इसका एक कारण मान सकते हैं । और एक कारण है कि इस समय के शासकों ने दिल्ली की आस-पास की खड़ी बोली को राजभाषा बनायी थी । दक्षिण प्रान्त भी उन शासकों के अधीन में होने के कारण उस भाषा को दक्षिण के लोग भी सीखने लगे थे । रामधारी सिंह दिनकर जी के विचार इस संबंध में यहाँ उल्लेखनीय है - "दक्खिनी को न केवल उत्तर से आये हुए मुसलमान ही बोलते थे, बल्कि दक्षिण के लोग भी अधिक रुचि के साथ अपनाने लगे थे, क्योंकि उस समय दिल्ली की आस-पास की खड़ी बोली और ब्रजयुक्त दक्खिनी राजभाषा होने के नाते उन लोगों को सीखना ही पड़ा था ।" *

4. दक्खिनी हिन्दी : शोध कार्य अनुशीलन :

दक्खिनी हिन्दी साहित्य फारसी तथा तेलुगु लिपि में होने के कारण अप्रकाशित तथा अज्ञात रूप में रह गया है । फिर भी कुछ विद्वानों में के सतत प्रयत्नों से शोध कार्य कुछ हद तक हुआ है । दक्खिनी हिन्दी का विस्तृत क्षेत्र शोध कार्य के लिए पड़ा हुआ है । आजतक दक्खिनी हिन्दी में जो शोध कार्य हुआ है उसका अनुशीलन यहाँ असमीचीन नहीं होगा । जो शोध कार्य संपन्न हुआ है उसको तीन भागों में बाँटकर देखा जा सकता है -

(अ) पाठानुसन्धान
(आ) इतिहास परक अध्ययन
(इ) भाषा परक अध्ययन ।

---

* संस्कृति के चार अध्याय - डा॰ रामधारी सिंह दिनकर
पृष्ठ 377

4.1. पाठानुसन्धान :

दक्खिनी हिन्दी मूल रचनाओं का प्रकाशन फारसी लिपि में अधिक हुआ है । फारसी तथा तेलुगु लिपि में प्राप्त रचनाओं को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत करने का कार्य तेजी से नहीं चल रहा है । जो प्रकाश में आये मूल रचनाओं का प्रकाशन का श्रेय डा. श्रीराम शर्मा, डा. राजकिशोर पाण्डेय डा. विमला वाघ्रे, डा. भीमसेन निर्मल, डा. विद्यासागर, डा. मुहम्मद आजम, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, श्रीमती के.शारदा आदि को है । प्रकाशित मूल रचनाएँ इस प्रकार हैं :-

1	दक्खिनी का पद्य और गद्य	: डा. श्रीराम शर्मा *
2	कुतुब मुश्तरी	: विमला वाघ्रे[2]
3	सबरस	: डा. श्रीराम शर्मा [3]
4	सैफुलमुलूक बदीउल जमाल	: डा. राजकिशोर पाण्डेय[4]
5	अली ग्रन्थावली भाग 2	: डा. मुहम्मद आजम[5]
6	मनसमझावन	: डा. विद्यासागर[6]

---

* दक्खिनी का पद्य और गद्य : संपादक - डा. श्रीराम शर्मा, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद ।

2 कुतुबमुश्तरी - मुल्ला वजही - संपादक - विमला वाघ्रे, दक्खिनी प्रकाशन, समिति, हैदराबाद ।

3 सबरस - मुल्ला वजही : संपादक - डा. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी प्रकाशन, समिति, हैदराबाद

4 सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल - मुल्ला गवासी - संपादक - राजकिशोर पाण्डेय, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद

5 अली ग्रन्थावली भाग-2, संपादक - डा. मुहम्मद आजम, अन्नपूर्णा प्रकाशन, गान्धीनगर, कानपुर ।

6 मनसमझावन - कवि शाह तुराब - संपादक - डा. प्र. विद्यासागर हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद ।

7. काव्य-संग्रह [कुल्यात] - मुहम्मद कुली कुतुबशाह - संपादक : डा. विमला मदन*
8. तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार - श्री पुरुषोत्तम कवि - डा. भीमसेन निर्मल[2]
9. श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक - संपादिका : श्रीमती के शारदा[3]
10. दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा : संपादक - महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[4]
11. फूलबन - इब्ने निशाती संपादक : श्री देवीसिंग व्यंकट सिंह चौहान[5]
12. दक्खिनी का गद्यात्मक ~~ग्रन्थ~~ साहित्य : डा. वेदप्रकाश शास्त्री[6]
13. रिसाले अलीफ बे : संपादक : डा. श्रीराम शर्मा [7]
14. विकट कहानी बारह मासा : मुहम्मद अफजल संपादक : डा. विद्यासागर[8]
15. तूतीनामा - ग़व्वासी संपादक : डा. विद्यासागर [9]
16. दक्खिनी के सूफी लेखकों का अध्ययन : डा. विमला वाघ्रे [10]

---

* काव्य संग्रह [कुल्यात]- मुहम्मद कुली कुतुबशाह - संपादक : डा. विमला मदन हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

2. तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार - श्री पुरुषोत्तम कवि - डा. भीमसेन निर्मल, हिन्दी साहित्य भण्डार, लखनऊ।

3. श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक - संपादिका - श्रीमती के.शारदा दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, गांधीनगर, हैदराबाद।

4. दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा - महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना।

5 फूलबन - इब्ने निशाती - संपादक : श्री देवीसिंग व्यंकट सिंह चौहान, महाराष्ट्रभाषा सभा, पूर्णे, प्रथम संस्करण, 1966

6 दक्खिनी का गद्यात्मक साहित्य : डा. वेदप्रकाश शास्त्री, मेरठ विश्व-विद्यालय की डी.लिट् उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, 1979

7 रिसाले अलीफ बे संपादक : डा. श्रीराम शर्मा [अप्रकाशित]/ हि.प्र.स., हैदराबाद

8. विकट कहानी बारह मासा - मुहम्मद अफजल, संपादक : डा. विद्यासागर

9. तूतीनामा : ग़व्वासी डा. विद्यासागर [संपादक]

10. दक्खिनी के सूफी लेखकों का अध्ययन : डा. विमला वाघ्रे, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की पी.एच-डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध, 1953-54

4.2. इतिहासपरक अध्ययन :

दक्खनी हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहासपरक अध्ययन करने और उसे प्रस्तुत करने में कुछ विद्वान् सफल रहे हैं । अबतक प्रकाशित दक्खनी हिन्दी भाषा और साहित्य के इतिहासपरक ग्रंथ इस प्रकार हैं -

1 दक्खनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा[1]
2 दक्खनी हिन्दी : विकास और इतिहास - डॉ.परमानन्द पांचाल[2]
3 दक्खनी साहित्य का इतिहास - दशरथ राज[3]
4 दक्खनी हिन्दी - डॉ. बाबूराम सक्सेना[4]

उपरोक्त दक्खनी हिन्दी साहित्य इतिहास परक ग्रंथों से साहित्य का काल विभाजन, साहित्यकार तथा रचनाओं का सामान्य परिचय मिलता है । अप्राप्य मूल सामग्री तथा इतिहास रचना को दृष्टि में रखकर देखने से जो कार्य हुआ है, वह अपने में महत्त्वपूर्ण है । साहित्य इतिहास से आगे इस ढ़ पर कार्य करनेवालों को प्रेरणा अवश्य मिल जाती है ।

---

1 दक्खनी हिन्दी का साहित्य - डॉ. श्रीराम शर्मा, दक्षिण प्रकाशन, गान्धी बाजार, हैदराबाद 1972
2 दक्खनी हिन्दी :विकास और इतिहास - डॉ. परमानंद पांचाल अलंकार प्रकाशन, दिल्ली 1978
3 दक्खनी साहित्य का इतिहास - दशरथ राज, अपोलो प्रकाशन, आगरा, 1972
4 दक्खनी हिन्दी - डॉ. बाबूराम सक्सेना, हिन्दुस्तानी एकादमी, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, 1952

4.3. भाषा सम्बन्धी शोध कार्य :

दक्खिनी हिन्दी भाषा परक शोध कार्य बहुत कम मात्रा में हुआ है । भाषापरक शोध कार्य का परिचय इस प्रकार है -

1. दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास - डॉ. श्रीराम शर्मा [*]
2. वली ग्रन्थावली - भाग - 1, डॉ. मुहम्मद आज़म,[2]
3. हिन्दुई बनाम दक्खिनी (भाषिक एवं सांस्कृतिक समन्वय) - डॉ. भालचन्द्र राव तेलंग[3]
4. दक्खिनी का प्रारंभिक गद्य - डॉ. राजकिशोर पाण्डेय[4]

---

* दक्खिनी का उद्भव और विकास - डॉ. श्रीराम शर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

2 वली ग्रन्थावली - भाग - 1, डॉ. मुहम्मद आज़म, अन्नपूर्णा प्रकाशन, गुमटी बाजार, कानपुर - 1978

3 पद्माकर अनुसंधान शाला, सुषमा निकुंज, बेगमपुरा, औरंगाबाद, महाराष्ट्र 1975

4 उस्मानिया विश्वविद्यालय द्वारा पी.एच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध, 1955

5. प्रस्तुत अध्ययन - आधारभूत कृतिकार और कृतियाँ :

5.1. वजही - सबरस,, कुतुबमुश्तरी :

दक्खिनी हिन्दी साहित्य के मध्यकाल साहित्यकारों में वजही का स्थान महत्वपूर्ण है। वे गद्य और पद्य दोनों विधाओं को समान रूप से संभालने में सफलता मिली है।

[क] जन्म और निवास :

वजही के जीवन सम्बन्धी कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। समकालीन साहित्यकारों द्वारा भी कहीं उनके जन्म के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता है। वजही के जीवन सम्बन्ध में जानकारी केवल उनके ग्रन्थ कुतुबमुश्तरी और सबरस से प्राप्त होती है। वजही गोलकुण्डा के कुतुबशाही शासकों के आश्रय में थे। डा॰ श्रीराम शर्मा जी वजही के आश्रयदाताओं में निम्न लिखित व्यक्तित्वों को माना है - *

मुहम्मद कुली कुतुबशाह	[1580 - 1612 ईसवी]
मुहम्मद कुतुबशाह	[1612 - 1626 ईसवी]
अब्दुल्ला कुतुबशाह	[1627 - 1672 ईसवी]

इससे स्पष्ट है कि वजही सन् 1580 से सन् 1672 के बीच में रहे होंगे। कुतुबमुश्तरी में उन्होंने स्वयं रचना काल के सम्बन्ध में लिखा है -

तमाम इस किया दीस बारा मने
सन एक हजार होर अठारा मने[2]

---

* दक्खिनी हिन्दी साहित्य - डॉ॰ श्रीराम शर्मा - पृ॰245

2 कुतुबमुश्तरी - वजही संपादक - विमला वाघ्रे पृ॰195

अतः कुतुबमुश्तरी का रचना काल 1018 हिजरी । 1610 ईसवी में निर्धारण हुआ । इसी प्रकार सबरस रचना काल के सम्बन्ध में वजही ने लिखा है -

"बारे, जिस वक्त था एक हजार व चहल व पंज उस वक्त जुहूर पकड़ा था यू गंज ।" *

अतः सबरस का रचनाकाल 1045 हिजरी [1636 ईसवी] है । इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि उक्त समय में वे विद्यमान थे । "कुतुबमुश्तरी" नागरी प्रकाशन के निवेदन में विमला वाघ्रे का कहना है कि वजही का जन्म 1588-1591 ईसवी के आसपास हुआ होगा । वजही के माता-पिता और गुरु के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है । उसी तरह उनकी शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं मिलता, फिर भी इनकी रचनाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि उनकी अच्छी शिक्षा हुई थी ।

[ग] सृजन कार्य :

"सबरस" [सन् 1636] और "कुतुबमुश्तरी" [सन् 1610] वजही द्वारा रचित दो प्रामाणिक रचनाएं हैं । उनकी और एक रचना "ताजुल-हकायक" की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रश्न चिन्ह लगे हुए हैं । "कुतुबमुश्तरी" रचना की दृष्टि से प्रथम रचना है, "सबरस" दूसरी रचना है । सबरस पद्यमय गद्य रचना मान सकते हैं । सबरस की भाषा सम्बन्धी में बच्चन सिंह का कथन उल्लेखनीय है । सबरस में ललित गद्य प्रयुक्त है । इस ग्रन्थ में सानुप्रासिक गद्य की प्रचुरता है जो साहित्यिक गद्य में आकर्षण उत्पन्न करता है ।[2]

---

* सबरस - वजही - संपादक - विमला वाघ्रे - पृ.204

2 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह - पृ.55

§ग§ मृत्यु :

वजही की मृत्यु के सम्बन्ध में भी जानकारी अप्राप्य है । वजही की मृत्यु के सम्बन्ध में डॉ• श्रीराम शर्मा जी ने तीन समयों का उल्लेख किया है - 1070 हिजरी / 1660 ईसवी, 1077 हिजरी/ 1677 ईसवी, 1081 हिजरी/ 1681 ईसवी ।* कुतुबमुश्तरी के निवेदन में विमला वाघ्रे ने वजही की मृत्यु को 1693 ईसवी माना है ।

5•2• गवासी - सैफुलमुलूक व बदीउल जमाल :

दक्खिनी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में प्रमुखत: आख्यानक कवियों में गवासी का शीर्ष स्थान है । अब्दुल्ला गोलकुण्डा के शासक मुहम्मद कुतुब शाह §1612 से 1626 ईसवी§ और अब्दुल्ला कुतुब शाह § 1627 से 1672 ईसवी § के शासन काल में गवासी विद्यमान थे । गवासी कवि होने के अलावा राजनीतिज्ञ भी थे । 1634-1636 ईसवी में वह बीजापुर में गोलकुण्डा के राजदूत थे ।[2] अब्दुल्ला कुतुब शाह के समय में गवासी राजकवि बनाये गये थे ।

§क§ जन्म और निवासने :

गवासी की जन्म तिथि तथा मृत्यु के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है । इनकी रचनाओं में प्राप्त अंत:साक्षों के आधार पर इनका जन्म तथा निवास का परिचय दिया जा सकता है । गवासी गोलकुण्डा का निवासी थे । इनके माता पिता के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता । इन्होंने अपनी मसनवी सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल* में इसका रचना काल दिया है -

---

* दक्खिनी हिन्दी का साहित्य : डॉ• श्रीराम शर्मा - पृ•245

2 - वही - पृ• 274

" बरस एक हजार पंज तीस में,
किया ख़त्म यूँ दिन तीस में " ।*

इससे प्रतीत होता है कि गृवासी ने सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल को 1035 हिजरी [सन् 1626] में पूरा किया । इन्होंने अपनी दूसरी मसनवी "तूतीनामा" 1049 हिजरी [सन् 1640] में रचना की थी । इस आधार पर कह सकते हैं कि उक्त समय में गवासी थे ।

[ख] सृजन कार्य :

इनके तीन प्रामाणिक आख्यानक काव्य हैं - "सैफुल मुलूक व बदीउल जमाल", "तूतीनामा", "मैनासतवन्ती ।"[2] आख्यानक काव्यों के अतिरिक्त भावगीत [ग़ज़ल] और प्रशंसा गीत [कसीदा] भी कुछ मिलते हैं ।

[ग] मृत्यु :

गृवासी की मृत्यु सम्बन्धी कोई आधारभूत उल्लेख प्राप्त नहीं है फिर इतना कहा जा सकता है कि सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह के शासन काल में ही इनकी मृत्यु हुई होगी ।

---

* सफुल मुलूक व बदीउल जमाल - संपादक - राजकिशोर पाण्डेय, पृ.219

2 उपरोक्त प्रथम दो रचनाएं प्रामाणिक माने जाते थे लेकिन मैनासतवन्ती की प्रामाणिकता में सन्देह था किन्तु स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी [हैदराबाद] में प्राप्त मैनासतवन्तीको हस्त लिखित प्रति देखने के बाद इसका लेखक गृवासी मान लिया गया । - दक्खिनी हिन्दी साहित्य - डा॰ श्रीराम शर्मा :पृ.296

5.3. कवि शाह तुराब - मनसमझावन :

दक्षिण भारत के आनाश्रित वातावरण में सदियों से सूफी संतों के आध्यात्मिक संदेश गूँजते रहे हैं। ऐसे संतों में से एक भ्रमणशील संत शाह तुराब जी थे। इनका असली नाम तुराब अली था। इनकी कृतियों में कहीं शाह तुराब और कहीं तुराब अली शाह के नाम के छाप मिलते हैं।

(क) जन्म और निवास :

शाह तुराब की जन्म तिथि के सम्बन्ध में मनसमझावन में कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। लेकिन इनका जन्म 1104 या 1105 हिजरी के आस-पास मानते हैं।* ये मद्रास के "तिरनामल" नामक स्थान के निवासी थे। आज कल उसे "तिरनामलई" के नाम से पुकारा जाता है।

(ख) शिक्षा :

शाह तुराब के गुरु पीर पाशा हुसैनी माने जाते हैं। इनकी शिक्षा-दीक्षा सूफी परिवार में होने के कारण वे इल्मे-रमल (इस्लामी ज्योतिष), तसव्वुफ (रहस्यवाद), हकीमी, खगोल तथा दर्शन के अधिकारी विद्वान् थे। पीर पाशा हुसैनी ने शाह तुराब को अपना उत्तराधिकारी बनाकर धर्म प्रचारार्थ कर्नाटक भेजा था। मद्रास, कर्नाटक और आन्ध्र राज्यों की यात्रा इन्होंने की थी।

---

* मनसमझावन - व्यक्तित्व और कृतित्व - संपादक - डा॰ विद्यासागर - पृ.5

§ग§ रचनाएं :

शाह तुराब की अनेक रचनाएं प्राप्त होती हैं -
"जुहूरे कुल्ली", "गंजुल असरार", "गुलजारे वहदत", "ज्ञानस्वरूप,"
आईने-ए-हसरत, मसनवी "महजबीन-ओ-मुल्ला" और "मनसमझावन" ।

§घ§ मृत्यु :

इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में कहीं आधारभूत उल्लेख नहीं मिलता है ।

5.4. पुरुषोत्तम कवि - हिन्दुस्तानी नाटक :

आधुनिक दक्खिनी हिन्दी लेखकों की चर्चा में प्रथम गण्य व्यक्तित्व श्री पुरुषोत्तम जी का है । दक्खिनी हिन्दी साहित्य में रचनाओं तथा समय की दृष्टि से उनका उल्लेखनीय स्थान है ।

§क§ जन्म तिथि :

साधारणतः भारतीय साहित्यकारों का परिचय अप्राप्य रहता है । अगर प्राप्त है तो भी अनेक वाद-विवाद से युक्त होता है । लेकिन पुरुषोत्तम जी की जन्म तिथि का विवरण उत्तम जीव यात्रा §1954 ईसवी में प्रकाशित§ तथा कवि के समकालीन अन्य लेखकों की रचनाओं * के आधार पर प्राप्त हुआ है । सीतारामपुरी दिवि तालूका, आन्ध्र प्रदेश के निवासी कामय्या तथा सुब्बम्मा के सुपुत्र पुरुषोत्तम जी का जन्म 24-4-1863 ईसवी में हुआ ।

---

* तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार : श्री पुरुषोत्तम कवि - डा. भीमसेन निर्मल - पृ.89

(ख) हैदराबाद में आगमन :

सन् 1864 में बंगाल की खाड़ी में एक भयंकर तूफान आया, लेकिन इस जल प्रलय से पुरुषोत्तम जी का परिवार बच गया और तुरन्त हैदराबाद पहुंच गया । इन परिस्थितियों ने पुरुषोत्तम जी को अपना जीवन प्रसिद्ध दक्खिनी हिन्दी केन्द्र हैदराबाद में बिताने का अवसर दिया । यहाँ उनको व्यावहारिक दक्खिनी हिन्दी सीखने का अत्यन्त सहज वातावरण प्राप्त हुआ ।

(ग) शिक्षा :

हैदराबाद के बेगमगंज प्रान्त में रहकर आसपास में होनेवाले नाच-गाना देखने के लिए पुरुषोत्तम जी जाया करते थे । रामायण महाभारत कृतियों का पठन नियमित रूप से करने लगे । राघवेन्द्र नामक मित्र से संस्कृत, गणित, उर्दू, पारसी की शिक्षा पायी । हैदराबाद विभिन्न भाषा-भाषियों का केन्द्र होने के कारण उनका दक्खिनी पर अधिकार प्राप्त हो गया । उन्होंने मैट्रिक परीक्षा दी थी, लेकिन अनुत्तीर्ण रहे ।

(घ) कार्य क्षेत्र :

पुरुषोत्तम जी ने हैदराबाद से रामनगर पहुँचने के बाद बचपन में ही एक पाठशाला खोली । अध्यापन का काम इन्होंने पहली बार शुरू किया । उसके बाद वल्लापल्ली नामक गाँव में छोटे मास्टर के नाम से अध्यापन का काम सम्पन्न करने लगे । तदनन्तर मछलीपट्टणम हिन्दू स्कूल में सन् 1887 से सन् 1908 तक प्रधान अध्यापक रहे । उन्होंने अपनी 43 वर्ष की आयु में नौकरी त्याग दी उसके बाद शेष जीवन को देशी विद्याओं के प्रचार और प्रसार में लगे रहे ।

(ङ) सृजन प्रेरणा :

पुरुषोत्तम जी को अपने सह पाठी, गुरु पुत्र गोपाल जी से कविता करने की प्रेरणा मिली । बचपन में ही छोटी-मोटी कविताएँ करने लगे और विद्वानों से उन्हें प्रशंसा भी मिला । लेकिन अपने सोलवें वर्ष में ही उन्होंने "अहल्या संक्रन्दनीयम" तेलुगु यक्षगान की रचना की । इन्होंने तेलुगु भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचना की और तेलुगु साहित्य के इतिहास में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया है । अपने मित्रों तथा दक्खनी हिन्दी नाटक प्रेमियों की प्रेरणा और अनुरोध से इन्होंने हिन्दी सृजन कार्य में भी अपनी रुचि दिखाई । लेकिन वह हिन्दी साहित्य राशि दुर्भाग्यवश अप्रकाशित, अज्ञात रूप और तेलुगु लिपि में उपेक्षित रही । इसी कारण से हिन्दी भाषी इनके साहित्य से अपरिचित रह रहे ।

(च) सृजन कार्य :

पुरुषोत्तम जी ने 112 पुस्तकों की रचना की है । संपूर्ण रचनाओं की सूची डा॰ भीमसेन निर्मल जी ने अपने शोध प्रबन्ध में "तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार - श्री पुरुषोत्तम कवि"* दी है । दक्खनी हिन्दी में रामायण, महाभारत, पुराण सम्बन्धी 32 नाटकों की रचना इन्होंने की है । लेकिन प्राप्त और देवनागरी लिपि में प्रकाशित नाटक है - "रामदास चरित्रम्", "भीमभिमानी चरित्रम्", "भद्रायुरभ्युदयम्", "कोतिमालिनी प्रदानम्", "अपूर्व दांपत्यम्" अहल्या संक्रन्दनीयम्" ।

(छ) मृत्यु :

पुरुषोत्तम जी अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा को समाज सेवा और परोपकार के लिए समर्पण करके पुरुषोत्तम जी सन् 1938 में 72 वर्ष की आयु में अपनी कीर्तिछाया को इस पृथ्वी पर छोड गये ।[2]

---

* तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार - श्री पुरुषोत्तम कवि - डा॰ भीमसेन निर्मल पृ॰276

2 वही - पृ॰102

निष्कर्ष :

दक्खनी हिन्दी साहित्य तथा भाषा के उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि दक्खनी हिन्दी भाषा का उद्भव और विकास दक्खनांचल में हुआ है । भाषा का नामकरण भी इसी "दक्खन" शब्द से जुड़कर दक्खनी बन गया है । दक्खनी का सम्बन्ध हिन्दी की बोलियाँ अवधी, ब्रज, हरियाणवी, पंजाबी, बांगरू आदि से है । इसके साथ-साथ अरबी-फारसी का पुट भी है और दक्षिणांचल की भाषाओं से भी दक्खनी हिन्दी प्रभावित है । उपरोक्त सभी भाषाओं का सम्यक प्रभाव भाषा की संरचना, शब्द भण्डार आदि पर अवश्य देखा जा सकता है । दक्खनी हिन्दी के दो रूप विकास की दृष्टि से स्पष्ट दिखाई देते हैं - बोलचाल का रूप, साहित्यिक रूप । दोनों रूपों में प्रान्तीय भाषा तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

दक्खनी हिन्दी भाषा के इतिहास के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसका आरंभिक रूप चौदहवीं शती से ही बनने लगा था । 15 वीं शती तक इसका विकास भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में अनवरत होता रहा । 17 वीं शती के बाद लगभग 70 वर्ष का समय निष्क्रिय रहा है । यह समझा जा सकता है कि उस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा अन्य कारणों से भाषा का साहित्यिक रूप न उभरा हो । आधुनिक युग में 19 वीं शती के अन्त में दक्षिण में नाटक कंपनियों के आगमन से दक्खनी साहित्य का विकास होने लगा । हो सकता है उर्दू की प्रधान्यता के कारण दक्खनी हिन्दी का विकास रुक गया हो । दक्खनी हिन्दी का सम्बन्ध सूफी साहित्य से भी है । अगर दक्षिण में मिलनेवाले सूफी साहित्य ग्रन्थों का चयन हो जाये तो

साहित्य का नया इतिहास भी उभर सकता है ।

अब तक जो शोध कार्य दक्खिनी हिन्दी पर हुए हैं, उनके समीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्खिनी हिन्दी साहित्य की अनेक दिशाएं अछूते पड़ी हुई हैं । उनमें उल्लेखनीय क्षेत्र पाठानुसन्धान तथा भाषा विज्ञान के हैं ।

द्वितीय अध्याय : ध्वनि विवेचन

साहित्यिक कृतियों द्वारा प्राप्त होते हैं, वे इतने आकर्षक हैं कि उनके आधार पर भी दक्खनी ध्वनि व्यवस्था की जानकारी अत्यन्त रोचक सिद्ध हो सकती । भाषा के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं उनके आधार पर किये गये निष्कर्ष अत्यन्त मूल्यवान भी हो सकते हैं । साहित्यिक दक्खनी हिन्दी की भाषा तात्त्विक आकलन के लिए प्रस्तुत अध्याय में साहित्यिक दक्खनी में प्राप्त सभी ध्वनियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । इस विश्लेषण के लिए सामग्री का चयन जिन साहित्यिक कृतियों से किया गया है उनमें प्रयुक्त भाषा भी कुछ हद तक अवश्य जनसामान्य में व्यवहृत भाषा रूपों के आधार पर ही गृहित परिलक्षित होती है ।

जहाँ तक ध्वनिग्रामों के निरूपण का सम्बन्ध है, इस अध्ययन में साहित्यिक कृतियों में प्रयुक्त उन सभी शब्दों का आकलन किया गया है जो ध्वनि प्रयोग की विभिन्न स्थितियों (आरम्भिक, मध्य और अन्त्य) से युक्त है । स्वल्पान्तर युग्मों के चयन की प्रणाली को छोड़ दिया गया है । प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत सिर्फ ध्वनि व्यवस्था का निरूपण ही नहीं बल्कि ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियों का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिससे ध्वनि व्यवस्था की एक समग्र झाँकी प्रस्तुत हो सके । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भाषा की ध्वनि व्यवस्था में विकास की जो सहज स्थितियाँ हैं, उनका साहित्यिक प्रयोग किस रूप में दक्खनी में संभव हो सका है ।

1 दक्खनी हिन्दी स्वनिम - परिचय : ....

1.1 स्वर :

/अ/ यह अर्द्धविवृत निम्न मध्य ह्रस्व स्वर है । इस ध्वनि का अस्तित्व संस्कृत के तत्समों, प्रान्तीय भाषाओं [तेलुगु, मराठी प्रमुखतः] से आगत शब्दों, विदेशी शब्दों [अरबी, फारसी] और हिन्दी की बोलियों से स्वीकृत शब्दों में पाया जाता है । कारण स्पष्ट है कि साहित्यिक स्रोतों में इन सभी भाषाओं की शब्दावली प्राप्त है । अतः यह कहा जा सकता है कि इन भाषाओं में इस ध्वनि के उच्चरित रूप का प्रभाव चाहे न रहा हो लेकिन प्रान्तीय उन भाषाओं का प्रभाव अवश्य है जिनका संपर्क स्थानीय रूप से प्राप्त हुआ है । इस ध्वनि का स्वतन्त्र प्रयोग शब्द की आदि में है और मध्य में अरबी, फारसी शब्दों में ही है । शब्द के मध्य और अन्त्य में यह ध्वनि संयुक्त व्यंजनों के साथ भी प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
अवतार 101-1 [से]	अनन्त 41-17 [कु],	सट 48-9 [सब]
अव्वल 63-5 [से],	शमवक्त 95-10 [से],	कठिन 13-2 [मन]
अवपल 7-9 [मन],	फिलवक्त 68-2 [से],	वाट 11-3 [सब]

/आ/ यह अर्द्धविवृत, निम्न, पश्च, दीर्घ स्वर है । इस ध्वनि का स्वतन्त्र प्रयोग शब्द के आदि में है और मध्य में अरबी, फारसी शब्दों में ही है । मध्य और अन्त्य में यह ध्वनि संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	
आधार 8-9 [कु],	मुआफिक 78-3 [दि•ना]	राजा 151-2 [दि•ना]
आराम 1-6 [मन],	किनारा 55-8 [से],	कुब्बा 157-21 [से]
आग 104-1 [सब]	पाया 145-18 [से]	टेढा 42-1 [मन]

/इ/ यह संवृत्त, उच्च, अग्र, ह्रस्व स्वर है । यह ध्वनि शब्द की आदि में स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त है । मध्य में अरबी, फारसी शब्दों में भी प्राप्त है । अन्य शब्दों में मध्य और अन्त्य स्थिति में संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
इच्छा 154-2 [दि•ना],	धरिवी 25-24 [दि•ना]	शक्ति 16-4 [मन]
इबादत 12-23 [कु],	काइदा 138-2 [सब],	सन्निधि 254-10 [दि•ना]
इमारत 31-20 [से],	मुस्तइद 94-18 [से],	शुद्धि 127-1 [दि•ना]
	दुस्थिति 106- [दि•ना]	

/ए/ यह संवृत, निम्न, अग्र. ह्रस्व स्वर ध्वनि है । यह ध्वनि सिर्फ शब्द के अन्त्य में प्राप्त है ।

अन्त्य

काढ़ 60-12 [कु] 4-14 [मन]

कढ़ 111-13 [कु]

लढ़ 114-20 [सब]

/ई/ यह संवृत, उच्च-अग्र दीर्घ स्वर है । यह आदि, मध्य और अंत्य में स्वतंत्र रूप से अरबीक, फारसी तथा तेलुगु शब्दों में प्रयुक्त है । मध्य और अंत्य में संयुक्त और असंयुक्त व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
ईमान 49-1 [सै],	फीक 106-23 [कृ],	कुर्सी 97-8 [सब]
	भीक 34-12 [चि॰ना]	बकाई 27-4 [चि॰ना]
	दर्कास 106-2 [सै]	जुदाई 88-1 [सब]
		माई 138-3 [सै]

/उ/ यह संवृत, पश्च, उच्च ह्रस्व स्वर ध्वनि है । यह ध्वनि आदि और मध्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है । लेकिन मध्य में मराठी, अरबी शब्दों में प्रयुक्त है । अंत्य में स्वतंत्र रूप से संस्कृत तद्भव शब्दों में इसका प्रयोग हुआ है । मध्य और अंत्य में व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है।

आदि	मध्य	अंत्य
उधम 26-16 [कृ]	दुर्जन 291-9 [चि॰ना]	गुरु 14-16 [मन]
उचापत 102-11 [सब]	बकीउल 162-21 [सै]	जिउ 10-8 [मन]
उकार 5-8 [मन]	जिउडा 66-4 [सै]	देउ 14-7 [मन]

/ऊ/ यह संवृत, पश्च, उच्च, दीर्घ स्वर ध्वनि है । यह स्वतंत्र रूप से शब्द की आदि में प्रयुक्त है । स्वतंत्र रूप से मध्य में अरबी, फारसी शब्दों में प्रयुक्त है । मध्य और अंत्य में व्यंजनों के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
ऊद 38-55 [सै]	खूब 65-24 [कृ]	हिन्दू 9-25 [सब]
ऊधम 103-16 [सब]	दाऊद 46-15 [सब]	जोरू 12-13 [मन]
	ममऊन 75-4 [कृ]	
	धूत 61-5 [चि॰ना]	

/ऋ/ हिन्दी भाषा क्षेत्र में " ऋ " का उच्चारण "रि" के रूप में होता है । लेकिन दक्खिनी हिन्दी में "अर", "अरी", " रु ", "रो" के रूपों में परिवर्तित हुई मिलती है । इसलिए इस ध्वनि के उच्चारण के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता । जहाँ स्वर ध्वनि के रूप में प्रयुक्त है वहाँ सिर्फ ध्वनि संकेत का ही प्रयोग हुआ माना जा सकता है । उच्चारण की दृष्टि से इस ध्वनि के उक्त चार रूप मिलते हैं । जो उदाहरण प्राप्त हैं वे सिर्फ संस्कृत तद्भव और तत्सम शब्द ही हैं । संस्कृत तद्भव शब्दों में यह ध्वनि आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है जिसके भी दो रूप हैं -- "ऋ" और "रु" । तत्सम शब्दों में "ऋ" का उच्चारण "र", "रि" और " रो" के रूप हैं :

आदि	मध्य
ऋषभ 194-4 [पि०ना]	अमृत 146-19 [कुतु]
ऋतु 194-24 [पि०ना]	अमरीत 62-9 [कुतु]
ऋषीन्द्र 92-6 [पि०ना]	अमरोत 38-10 [कुतु]
रुत 139-6 [सब]	

/ए/ यह अर्द्धसंवृत, उच्च, अग्र० दीर्घ स्वर है । शब्द की आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है तथा शब्द के मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
एक 105-3 [कुतु]	वरेज 42-17 [कुतु]	फिरे 207-5 [कुतु]
एकाँस 3-4 [सब]	वेढी 45-1 [सब]	मेरे 63-6 [पि०ना]
		मिलेश 17-9 [कुतु]

/ए/ यह अर्धविवृत, अग्र उच्च-निम्न ह्रस्व स्वर है । शब्द के आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है । वैसे तो भारतीय आर्य भाषा और द्रविड़ भाषाओं में यह ध्वनि विद्यमान है, लेकिन इस ध्वनि की प्रयुक्ति अरबी, फारसी शब्द के साथ हुई है । जो उदाहरण प्राप्त है वे इस प्रकार है :

आदि

एतमाद 177-12 (से)
एत्तेला 138-15 (रि ना)
एतबार 127-23 (से)

/ऐ/ यह अर्धविवृत, अग्र,उच्च,दीर्घ स्वर है । साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में यह स्वर मूलस्वर के रूप में प्रयुक्त है । यह प्रयोग प्राय: अरबी, फारसी भाषाओं के शब्दों में पाया जाता है । अन्यत्र संयुक्त स्वर भी माना जा सकता है ।

यह शब्द के आदि और मध्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है, लेकिन इसके उदाहरण अरबी फारसी के ही है । मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
ऐसा 56-17 (से)	सैर 150-16 (से)	तैं (ज+ह) 59-11 (रि.ना)
ऐन 18-2 (कु)	बैरेव 84-2 (सब)	कहैं 107-3 (कु)
ऐजाज 9-18 (सब)	हैदा 45-8 (मन)	हैं 87-2 (रि.ना)

/औ/ यह अर्धसंवृत, उच्च, पश्च, दीर्घ है । यह शब्द के आदि और अंत्य में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है । मध्य और अंत्य में व्यंजन

के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
ओक्ल 69-24 [कुतु]	चोर 65-7 [चि०ना]	दो 42-6 [से]
ओंच 39-1 [मन]	कोर्ड 9-3 [सब]	सो 23-13 [सब]
	मोती 18-3 [से]	दोनों 46-12 [मन]

/ओँ/ यह अर्धसंवृत, पश्च, ह्रस्व स्वर है । यह ध्वनि द्रविड़ भाषा ध्वनि से प्रभावित है । यह ध्वनि तेलुगु भाषा से आगत एक शब्द में प्रयुक्त है । प्राप्त उदाहरण में यह ध्वनि शब्द के मध्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है ।

मध्य

दोंरा 192-2 [कुतु]

/औ/ यह अर्द्धसंवृत, उच्चतर मध्य, दीर्घस्वर है । दक्खिनी हिन्दी में "औ" स्वतंत्र तथा मूल स्वर के रूप में प्रयुक्त हुआ है । यह तथ्य द्रविड़ भाषाओं से प्रभावित है । वैसे द्रविड़ भाषाओं में "औ" ध्वनि विद्यमान है । यह संस्कृत तथा भारतीय आर्य भाषाओं में संयुक्त स्वर माना जाता है । शब्द को आदि में स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है । मध्य और अंत्य में व्यंजन के साथ प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
और 16-18 [से]	होर 46-3 [मन]	सौ 26-10 [से]
औरत 9-1 [सब]	कौन 41-3 [चि०ना]	
औतार 44-9 [कुतु]	फौजां 21-11 [से]	

2 सानुनासिक स्वर :

दक्खनी ध्वनि व्यवस्था में सानुनासिक स्वर की स्थिति प्रमुखरूप देखी जा सकती है। * समस्त स्वर सानुनासिक स्थिति में भी पाये जाते हैं। सानुनासिक स्वर की स्थिति भी शब्द के आदि मध्य और अंत्य में पायी जाती है। इनके उदाहरण इस प्रकार है।

	आदि	मध्य	अंत्य
/अँ/	अँदाजा 13-20 [सै]	सँदू 155-19 [सै],	ठाव 103-16 [सै]
	अँपड़ी 108-9 [कुतु]	सँवार 17-8 [कुतु]	नावँ 107-7 [कुतु]
	अँगी 7-11 [सब]	कँवल 47-3 [मन]	
/आँ/	आँख्याँ 48-2 [सै]	नाँपाक 131-12 [सै],	कजाँ 91-1 [सब]
	आँक 131-11 [सै]	माँदगी 74-9 [कुतु]	दावाँ 68-1 [कुतु]
		पाँव 34-12 [कुतु],	फनाँ 171-15 [पि.ना]
/इँ/	-	लेइँगी 139-2 [पि.ना]	गइँ 40-9 [मन]
		आइँदा 79-1 [पि.ना]	तइँ 38-3 [मन]
/ईं/	-	मोईंद 103-4 [सै]	नईं 90-4 [सब]
			नहीं 29-5 [मन]
			वहीं 83-10 [सै]

---

* इनके उच्चारण के सम्बन्ध में मुहम्मद आजम ने कहा है -

स्वानुनासिक स्वरों के उच्चारण में स्थान वही रहता है, किन्तु साथ ही कोमल तालु और कौवा कुछ नीचे झुक जाता है, और बाहर आनेवाली वायु का अंश मुख विवर के अतिरिक्त नासिक विवर से भी निकलने लगता है, जिससे स्वर में अनुनासिकता आ जाती है।

दक्खनी ग्रन्थावली भाग पहला डॉ मुहम्मद आजम पृ. 82.

/उँ/	-	देऊँगी 126-6 [से] मुँड़ 7+7 [कु] मुँकुला 160-8 [से]	
/ऊँ/	ऊँघा 78-5 [से]	पहुँचा 78-6 [से] पूछेंगा 139-15 [चि.ना] कुँआर 124-14-14 [सब]	जीऊँ 48-116 [चि.ना] पाऊँ 48-7 [मन] कहूँ 142-20 [से]
/ए,एँ/	-	आपणी 100-3 [सब] देवेंगी 49-15 [मन] में 116-10 [से]	पीछें 110-3 [सब] चाहें 127-7 [चि.ना] देखें 101-13 [सब]
/ऐं/	-	में 8-3 [कु] अर्पें 16-10 [कु]	हैं 59-10 [चि.ना]
/ओं/	-	-	धाकों 35-2 [मन] दोनों 59-6 [चि.ना] क्यों 8-22 [कु]
/औं/	-	चौधीर [38-1] [से]	तरफों 117-5 [चि.ना] तकलीफों 63-21 [चि.ना]

उपरोक्त तालिका के आधार पर निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सानुनासिक स्वरों की व्यवस्था में /अँ/, /आ/, /ऊँ/ ऐसे स्वर हैं जिनकी स्थिति शब्द की तीनों अवस्थाओं में मिलती है। /इँ/, /ईं/, /ए,एँ/, /ऐं/, /ओं/ और /औं/ की स्थिति शब्द के मध्य और अंत्य में है। /उँ/ की स्थिति सिर्फ मध्य में पायी जाती है।

3. व्यंजन :   ..   ..   ..

/क/ यह स्पर्श कंठ्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । इसकी स्थिति शब्द के आदि मध्य और अंत्य में पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अंत्य
कमल 159-8 [ले]	भीकर 156-15 [चि.ना]	मुलुक 142-21 [ले]
करीम 2-3 [कु]	निकल 125-9 [सब]	धक्क 81-14 [कु]
कसरत 2-17 [मन]	बकन 9-14 [मन]	आशिक 121-1 [सब]

/क़/ यह स्पर्श संघर्षी अलिजिह्वीय अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । साहित्यिक दक्खनी हिन्दी में प्रयुक्त यह ध्वनि सिर्फ अरबी तत्सम शब्दों में पायी जाती है । यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है । यह अरबी फारसी ध्वनि से आगत ध्वनि है।

आदि	मध्य	अंत्य
क़लम 10-1 [ले]	वक़ीकत 15-27 [चि.ना]	सिदक़ 10-7 [कु]
क़रार 2-14 [मन]	वक़ीश 8-20 [कु]	फ़रक़ 4-9 [सब]
	आक़िल 4-9 [सब]	

/ख/ यह स्पर्श कंठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । इसका सम्बन्ध संस्कृत, भारतीय आर्य भाषा स्रोतों में देखा जा सकता है । शब्द के आदि मध्य और अंत्य में यह ध्वनि पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अंत्य
खान 17-18 [ले]	अखंड 175-15 [ले]	मुख 114-2 [चि.ना]
खबर 127-17 [सब]	दखिनी 29-13 [कु]	दुख 73-14 [कु]
खुशी 21-21 [कु]	अखुल 124-17 [सब]	देख 11-7 [मन]

[ख़] यह संघर्षी जिह्वामूलीय महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह अरबी, फारसी भाषा ध्वनियों से आगत ध्वनि है । यह ध्वनि सिर्फ अरबी फारसी तत्सम शब्दों में प्रयुक्त है । इसकी स्थिति शब्द के आदि मध्य और अंत्य में पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अंत्य
ख़ाक 11-15 [मन]	बेख़बर 142-11 [से]	सुर्ख़ 181-18 [से]
ख़बीर 1-18 [कु]	मख़फी 20-17 [सब]	दोज़ख़ 120-24 [कु]
ख़ुदा 69-2 [चि.ना]	आख़िर 8-16 [मन]	

[ग] यह स्पर्श कंठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
गगन 88-18 [कु]	कंगन 29-12 [कु]	लोग 6-7 [चि.ना.]
गज 129-13 [कु]	अनुग्रह 187-15 [चि.ना.]	जग 3-7 [मन]
गरज 94-16 [से]	नगर 9-1 [मन]	कग 5-4 [कु]

[ग़] यह संघर्षी, जिह्वामूलीय, अल्पप्राण, सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि अरबी, फारसी भाषाओं से आगत ध्वनि है । सिर्फ अरबी फारसी शब्दों में यह ध्वनि प्रयुक्त है । शब्द के आदि मध्य और अंत्य में इसकी स्थिति पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
ग़म 7-4 [कु]	बलाग़त 20-14 [से]	बाग़ 107-8 [कु]
ग़िज़ावा 11-3 [सब]	मग़ज़ 193-2 [कु]	फ़ारिग़ 78-15 [से]
ग़ोस 10-11 [से]		

/घ/ यह स्पर्श कंठ्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि शब्द के आदि और मध्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	
घड़ी 41-19 [से]	घूंघट 161-3 [से]	
घुट 12-17 [सब]	उल्लंघन 16-15 [पि०ना०]	-
घर 23-8 [पि०ना०]		

/ङ०/ यह अनुनासिक कंठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि सिर्फ शब्द के मध्य में प्रयुक्त हुयी है । जो शब्द मिला है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह संस्कृत अनुनासिक संधि के पर्यवसान में ही मिलती है ।

	मध्य	
-	बाँध वाङ०मर्य 75-25 [पि०ना०]	-

/च/ यह स्पर्श-संघर्षी दंत्यतालव्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
चल 18-14 [कतु]	चंचल 58-1 [सब]	पाँच 105-6 [कतु]
चतुर 49-3 [मन]	उचाट 62-22 [से]	आपोच 62-28 [पि०ना०]
चंदन 169-22 [से]	अचपली 113-17 [कतु]	कुच 171-1 [से]

/छ/ यह स्पर्श संघर्षी, दंत्यतालव्य, महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
छल 33-22 {कृत}	बच्छा 100-1 {हि.ना.}	कुछ 17-3 {कृत}
छबीली 156-3 {से}	पछता 12-14 {कृत}	अछ 144-2 {सब}
छोड 15-1 {मन}	निछल 37-22 {से}	

/ज/ यह स्पर्श संघर्षी दंत्यतालव्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है।

आदि	मध्य	अन्त्य
जगत 6-19 {कृत}	मुहताज 17-14 {से}	महाराज 119-1 {हि.ना.}
जवान 23-22 {से}	विराजित 204-1 {हि.ना.}	आज 81-10 {कृत}
जड 51-19 {सब}	अजल 103-20 {कृत}	ताज 105-12 {से}

/ज़/ यह वर्त्स्य संघर्षी अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह ध्वनि केवल अरबी फारसी अरबी फारसी तत्सम शब्दों में ही प्रयुक्त हुयी है। यह ध्वनि अरबी फारसी भाषा ध्वनियों से आगत ध्वनि है। यह शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है।

आदि	मध्य	अन्त्य
ज़ुल्म 20-22 {से}	कज़ा 33-13 {हि.ना}	नमाज़ 13-14 {कृत}
ज़ुल्फार 1-7 {कृत}	नज़र 28-2 {कृत}	कशीज़ 45-12 {से}
ज़ुबान 95-1 {सब}	फज़ुहार 20-17 {सब}	मुमताज़ 23-4 {सब}

/झ/ यह स्पर्श संघर्षी दंत्यतालव्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुयी है।

आदि	मध्य	
झनकार 17-19 [से]	निझाई 157-1 [से]	समझ 179-13 [से]
झूट 4-13 [मन]	समझा 4-15 [मन]	तुझ 117-3 [सब]
झाड़ु 14-10 [कृ]		मुझ 153-20 [पि.ना.]

/ट/ यह स्पर्श मूर्धन्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
टालना 10-15 [मन]	संघटन 139-24 [पि.ना.]	राजघाट 103-5 [सब]
टूट 152-20 [से]	लटपट 210-20 [से]	फूट 30-2 [कृ]
टूक 22-10 [कृ]	चटकी 75-5 [कृ]	घट 3-10 [मन]

/ठ/ यह स्पर्श मूर्धन्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	
ठार 91-21 [सब]	कठोरी 47-11 [से]	उठ 143-4 [पि.ना.]
ठेल 22-11 [कृ]	उठ्या 103-3 [कृ]	पीठ 98-20 [से]
ठारता 9-7 [मन]		साठ 46-14 [सब]

/ड/ यह स्पर्श मूर्धन्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुयी है ।

आदि	मध्य	अन्त्य
डग 39-11 [से]	मंडल 107-11 [से]	खण्ड 35-20 [कृ]
डाट 22-17 [कृ]	मण्डल 5-9 [मन]	ब्रह्माण्ड 5-10 [मन]
डाली 91-10 [सब]	दूंडन 90-11 [सब]	जड़ 143-7 [पि.ना.]

/ड़/ यह मूर्धन्य उत्क्षिप्त अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। जैसे "ड़" मूर्धन्य ध्वनि है लेकिन द्रविड भाषाओं में "ड़" उत्क्षिप्त ध्वनि बन गयी है। अतः यह ध्वनि द्रविड भाषाओं से प्रभावित है। यह ध्वनि शब्द के मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त हुयी है।

	मध्य	अन्त्य
	कड़क 41-8 (कृतु)	उखाड़ 16-9 (हि॰ना॰)
-	बड़ा 2-7 (मन)	जड़ 51-19 (सब)
	बड़ती 42-14 (मन)	पकड़ 74-15 (से)

/ढ/ यह स्पर्श मूर्धन्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। यह शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त है।

आदि	मध्य	अन्त्य
डमफम ढलना 14-7 (सब)	निढाल 113-2 (से)	देढ 28-27 (हि॰ना॰)
ढूढती 157-6 (से)		
ढंग 10-9 (कृतु)		

/ढ़/ यह मूर्धन्य उत्क्षिप्त महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है। हिन्दी की बोलियों में यह ध्वनि विद्यमान है। यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अन्त्य में प्रयुक्त हुई है।

आदि	मध्य	अन्त्य
ढूढ़े 183-1 (से)	बढ़ाये 1-5 (सब)	चढ़ 66-5 (से)

/ण/ यह अनुनासिक, मूर्धन्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि संस्कृत और हिन्दी भाषा में विद्यमान है । द्रविड भाषाओं में भी यह ध्वनि है । अरबी फारसी भाषाओं में यह ध्वनि नहीं है । "ण" के स्थान पर "न" का प्रयोग दक्खिनी में होता है । फिर भी "ण" ध्वनि का प्रयोग दक्खिनी हिन्दी में मिलता है । शब्द के मध्य और अंत्य में इस ध्वनि की स्थिति पायी जाती है ।

मध्य	अंत्य
गुणवती 139-27 (हि.ना.)	निरूपण 144-27 (हि.ना.)
कण्ठ 16-4 (मन)	रक्षण 179-1 (हि.ना.)
प्रणाम 178-19 (हि.ना.)	

/त/ यह स्पर्श दंत्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
तर 105-18 (कुतु)	उत्तम 178-17 (हि.ना.)	बात 2-10 (मन)
तब 6-10 (मन)	पुतह 105-4 (कुतु)	रात 41-17 (से)
तूफान 21-11 (सब)	अवतार 101-1 (से)	सौगात 93-4 (कुतु)

/थ/ यह स्पर्श दंत्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
थरथर 102-6 (से)	अस्थान 16-4 (मन)	जगन्नाथ 179-3 (हि.ना.)
थावे 22-24 (कुतु)	उथल 103-16 (सब)	साथ 146-15 (हि.ना.)

/द/ यह स्पर्श दंत्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
दहन 73-3 {सब}	बदन 71-3 {कृतु}	मर्द 161-7 {से}
दल 68-11 {से}	उदास 15-1 {मन}	सनद 153-3 {से}
दफन 29-13 {कृतु}	जुदाई 21-6 {सब}	जुद 71-5 {कृतु}

/ध/ यह स्पर्श दंत्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह संस्कृत के तत्सम, तद्भव और हिन्दी शब्दों में ही प्रयुक्त हुयी है । उदाहरण प्रस्तुत है -

आदि	मध्य	अंत्य
धर्म 126-6 {हि•ना•}	किधर 70-22 {से}	संबंध 126-21 {हि•ना•}
धन 162-21 {से}	उधर 6-4 {मन}	क्रुध 43-15 {मन}
धाय 21-21 {कृतु}	जिधर 23-12 {सब}	बेसुध 73-8 {से}

/न/ यह वर्त्स्य, अनुनासिक अल्पप्राण, सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अंत्य
नाम 3-2 {मन}	हुनर 6-1 {मन}	दिन 7-4 {मन}
निवारण 112-2 {हि•ना•}	मनोरथ 86-2 {हि•ना•}	खून 11-8 {सब}
नज़र 102-4 {सब}	अस्नान 108-21 {हि•ना•}	मदन 41-3 {कृतु}

/न्ह/ यह अनुनासिक महाप्राण ध्वनि कही जा सकती है । हिन्दी में यह एक स्वनिम ध्वनि मानी गयी है । इसकी स्थिति आदि और मध्य में पायी जाती है ।

आदि	मध्य
न्हाट 197-2 [से]	तन्हाई 54-12 [कु]
न्हास 94-7 [कु]	पिन्हा 33-4 [सब]

/प/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह ध्वनि शब्द की सभी स्थितियों में पायी जाती है ।

आदि	मध्य	अंत्य
पाप 9-13 [कु]	प्रजापति 86-18 [हि॰ना॰]	आप 33-2 [कु]
पश्चात 20-5 [से]	निपट 71-3 [कु]	रूप 2-8 [मन]
पासी 96-11 [सब]	तिरपती 14-13 [मन]	कोप 85-5 [कु]

/फ/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । शब्द के आदि मध्य और अंत्य में यह ध्वनि प्रयुक्त है ।

आदि	मध्य	अंत्य
फरट 73-8 [से]	सिफत 17-1 [कु]	तारीफ 68-7 [से]
फुसला 171-1 [सब]	मुआफिक 173-4 [हि॰ना॰]	साफ 33-14 [मन]
फूल 154-14 [से]	खिलाफत 7-7 [मन]	

/फ़/ यह संघर्षी दंत्योष्ठ्य महाप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह अरबी के तत्सम शब्दों में भी प्रयुक्त है । यह अरबी भाषा से आगत ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त है ।

आदि		
फ़कीर 162-7 [सब]	अफ़राज 11-8 [से]	इनसाफ़ 31-8 [कृत]
फ़हम 10-17 [से]	तफ़रीज 2-1 [कृत]	सैफ़ 83-12 [सब]
फ़रिश्ते 85-24 [कृत]	सिफ़त 21-12 [सब]	

/ब/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुयी है ।

आदि	मध्य	अंत्य
बल 121-23 [सब]	छब्बा 72-4 [से]	सौब 3-14 [मन]
बन 66-22 [कृत]	सुबर 42-12 [कृत]	अब 196-1 [हि.ना.]
बशारत 8-15 [मन]	दरबार 146-5 [सब]	शराब 54-8 [सब]

/भ/ यह स्पर्श द्वयोष्ठ्य महाप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
भारत 96-2 [से]	प्रभाव 205-27 [हि.ना.]	शुभ 204-3 [हि.ना.]
भाता 14-10 [मन]	गंभीर 50-15 [से]	
भोजन 121-23 [सब]	सम्भाल 78-9 [कृत]	

/म/ यह अनुनासिक द्वयोष्ठ्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
मजन 39-1 [कृ]	सलामत 115-14 [से]	मकाम 59-3 [पि.ना.]
मतलब 6-8 [मन]	कमल 53-8 [कृ]	अंजाम 2-17 [मन]
मस्ती 86-1 [सब]	कमर 7-17 [मन]	दम 73-2 [से]

/म्ह/ यह अनुनासिक महाप्राण ध्वनि कही जाती है, लेकिन स्वनिम नहीं मानी जा सकती । यह शब्द की आरम्भिक "म" ध्वनि पर प्राण का बलाघात है । अस्तित्व की दृष्टि से यह महत्त्व पूर्ण नहीं है । फिर भी परिगणना की दृष्टि से इस का उल्लेख असमीचीन नहीं होगा । एक आध उदाहरण इस प्रकार हैं ।

आदि	मध्य
म्हारो 173-17 [सब]	तुम्हारा 31-24 [से]

/य/ यह अर्द्धस्वर तालव्य संघर्ष रहित सघोष ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	
यार 42-4 [से]	कल्याण 77-23 [पि.ना.]	वाय 90-8 [कृ]
यता 93-1 [कृ]	नयन 141-10 [से]	अरण्य 217-1 [पि.ना.]
यकपना 31-5 [मन]	ख्याल 147-3 [सब]	होय 172-20 [से]

/र/ यह लुंठित वर्त्स्य अल्पप्राण सघोष व्यंजन ध्वनि है । द्रविड भाषाओं में लुंठित "र" के अतिरिक्त मूर्द्धन्य "र" प्रयुक्त है । हिन्दी की कुछ

बोलियों में कठोर "ड़" है । लेकिन साहित्यिक दक्खिनी में कोमल "ड़" अर्थात् वर्त्स्य "ड़" का प्रयोग ही मिलता है । यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
राम 5-9 §मन§	भारती 77-17 §फि.ना.§	हुनर 43-12 §से§
रसूल 162-3 §सब§	हैरान 48-4 §से§	मगर 6-1 §मन§
रहमान 42-18 §से§	सुरत 21-3 §सब§	गैर 21-15 §सब§

/ल/ यह पार्श्विक वर्त्स्य अल्पप्राण और सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
लाल 48-15 §कुतु§	हलाल 11-8 §सब§	अनुकूल 91-1 §फि.ना.§
लगन 21-1 §सब§	मिलन 68-12 §से§	पाताल 42-12 §कुतु§
लम्बा 75-12 §से§	ढलते 71-1 §कुतु§	दिल 2-10 §मन§

/व/ यह अर्द्धस्वर दन्त्योष्ठ्य संघर्षी सघोष ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	
वक्त 77-6 §फि.ना.§	दिवाना 54-3 §से§	देव 35-8 §कुतु§
वजा 33-13 §कुतु§	हवस 31-16 §कुतु§	निर्जीव 66-3 §सब§
वादा 7-8 §मन§	सवाद 147-1 §सब§	अस्व 162-17 §कुतु§

/श/ यह तालव्य संघर्षी अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
शरफ 26-6 (से)	खासत 42-10 (कु)	खुश 107-11 (कु)
शाम 1-10 (मन)	दुश्मन 148-10 (सब)	अंदेशा 151-22 (सब)
शिकार 129-11 (हि.ना.)		
	खारश 8-15 (मन)	हमेशा 173-11 (हि.ना.)

/ष/ यह मूर्धन्य संघर्षी अघोष व्यंजन ध्वनि है । जो उदाहरण प्राप्त हैं वे संस्कृत तत्सम शब्द ही है । यह ध्वनि शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
षटकर्म 176-3 (हि.ना.)	कषाय 176-4 (हि.ना.)	महापुर्ष 15-4 (सब)
	भाषण 165-12 (हि.ना.)	संतोष 205-3 (हि.ना.)
	पोषण 160-1 (हि.ना.)	शेष 166-1 (हि.ना.)

/स/ यह वर्त्स्य संघर्षी अल्पप्राण अघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द की सभी स्थितियों में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
सरल 31-15 (कु)	एहसान 70-3 (से)	मास 121-23 (सब)
सदा 178-3 (हि.ना.)	किसवत 115-13 (कु)	पास 76-11 (कु)
सारा 8-4 (मन)	असर 9-17 (मन)	दास 3-9 (मन)

/ह/ यह स्वरयंत्रमुखी काकल्य संघर्षी सघोष व्यंजन ध्वनि है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	अंत्य
हक् 13-5 (कुतु)	पहम 23-5 (से)	सुबह 79-8 (से)
हम 3-7 (मन)	ग्रहण 179-31 (हि.ना.)	
		शाह 85-22 (कुतु)
हजार 103-18 (सब)	महल 15-7 (मन)	रह 15-4 (मन)

(ज्ञ) यह संयुक्त व्यंजन ध्वनि है । "ज्ञ" में ज+ञ का योग है । इसका उच्चारण ग्य के रूप में प्राय: होता है । यह शब्द के आदि मध्य और अंत्य में प्रयुक्त हुई है ।

आदि	मध्य	
ज्ञान 21-77 (से)	प्रज्ञा 209-3 (हि.ना.)	सर्वज्ञ 171-10 (हि.ना.)
	अनुज्ञा 204-5 (हि.ना.)	

हमजा:

इसका स्थान अलिजिह्वीय है । यह अरबी ध्वनि है । फारसी तथा अरबी शब्दों में प्रयुक्त होती है । उर्दू में हमजा का उपयोग षष्ठी तत्पुरुष को सूचित करने के लिए किया जाता है । "ए" अथवा "ओ" की ध्वनि को अन्य ध्वनियों से पृथक करने के लिए भी इसका उपयोग होता है । दक्खिनी में प्रयुक्त होनेवाले अरबी शब्दों में पठित लोग हमजा का ठीक-ठीक उच्चारण करते हैं । हिन्दी "ए" और "ओ" का स्पष्ट उच्चारण करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है । डा॰ श्रीराम शर्मा जी के अनुसार हमजा के उदाहरण इस प्रकार है । लेकिन साहित्यिक दक्खिनी में यह ध्वनि स्पष्ट नहीं है ।*

उदा : षष्ठी तत्पुरुष - सुनाए मुहम्मद

"यू" का उच्चारण स्वर से पृथक करने के लिए - कायल

हिन्दी "ए" को पूर्ववर्ती स्वर से भिन्न रखने के लिए - आईए जनाब ।

---

* दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास : डा॰ श्रीराम शर्मा : पृ.48

३.१. दक्खिनी की ध्वनि व्यवस्था :

स्वनिम के उपर्युक्त विवेचन और निरूपण के आधार पर दक्खिनी की स्वनिम व्यवस्था को निम्न तालिका में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है -

स्वर ध्वनियाँ : अ, आ, इ, ऍ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए
ऍ, ऐ, ओ, ऑ, औ

इन स्वर ध्वनियों के अलावा प्रायः सभी स्वर ध्वनियों के अनुनासिक रूप भी मिलते हैं ।

व्यंजन ध्वनियाँ:

स्पर्श : क, ख, ग, घ
च, छ, ज, झ
ट, ठ, ड, ढ *
त, थ, द, ध
प, फ, ब, भ

---

* डा॰ श्रीराम शर्मा जी ने इस वर्ग के बाद ट़, ठ़, ड़, ढ़ की व्यवस्था मानी है । ये सामान्य प्रयोग में चाहे हों पर साहित्यिक भाषा प्रयोग में ये रूप स्पष्ट नहीं है । इतना कहा जा सकता है कि जिन शब्दों में इस प्रकार का उच्चारण रहा हो वे उसी रूप से उच्चरित किये जा रहे हों । श्रीराम शर्मा जी के उदाहरण हैं :- ट़ - ट़्टरी, ट़ीक । ठ़ - ठ़ुली। ड़ - ड़ोंगर, ड़ोले, धड़ोरा । ढ़ - ढ़िगार, ढ़िढोरा ।
इस प्रकार के शब्द आधारभूत साहित्यिक रचनाओं में से प्राप्त नहीं हैं ।
- दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास - डा॰ श्रीराम शर्मा : पृ॰ २९

अनुनासिक : ङ्, ण्, न्, न्ह, म्, म्ह

संघर्षी : ख़्, ग़्, ज़्, फ़्, व, श्, ष्, स, ह

पार्श्विक : ल्

लुण्ठित : र्

उत्क्षिप्त : ड़, ढ़

अर्धस्वर : य, हमजा

4. <u>संयुक्त व्यंजन व्यवस्था :</u>

संयुक्त व्यंजन व्यवस्था शब्द रचना की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश डालती है । इस व्यवस्था का त्रिविध रूप शब्द रचना में मिलता है - आदि मध्य और अंत्य । इस व्यवस्था की एक द्विविध स्थिति और भी मिलती है : द्वित्व और संयुक्त । तत्सम शब्दों में तीन व्यंजनों तक का संयोग मिलता है । त्रि-व्यंजनात्मक संयोग की अपेक्षा द्वि-व्यंजनात्मक संयोग का बाहुल्य है । मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग सर्वाधिक है, जबकि आदि और अन्त्य स्थानीय संयोग कम है ।

4.1. <u>आदि स्थानीय व्यंजन-संयोग :</u>

आदि स्थानीय व्यंजन-संयोग के चार प्रकार मिलते हैं :-

1. स्पर्श + स्पर्शेतर 2. स्पर्शेतर + स्पर्श 3. अनुनासिक + स्पर्श 4. स्पर्शेतर + स्पर्शेतर ।

4.1.2. <u>स्पर्श + स्पर्शेतर :</u>

क्+य् - क्या 39-12 (चि.ना.)

ख्+य् - ख्याल 19-2 (से), 3-6 (क्रु)

छ् + य् - छ्याछिला 95-14 (पि.ना.)

ज् + द् - ज्यास्त 108-23 (कु)

ज् + य् - ज्यादा 137-2 (सव)

त् + व् - त्वरित 94-11 (पि.ना.)

ध् + य् - ध्यान 149-9 (से), 36-12 (कु) 1-10 (मन)

प् + य् - प्याज 75-18 (से)

प् + य् - प्यारी 150-1 (पि.ना.)

प् + र - प्रान 76-1 (सव)

भ् + य् - भ्याव 178-4 (कु)

4.1.3. <u>स्पर्शेतर + स्पर्श :</u>

स् + थ् - स्थल 169-11 (पि.ना.)

स् + प् - स्पर्धा 95-22 (पि. ना.)

स् + फ् - स्फूर्ति 153-3 (पि. ना.)

4.1.4. <u>अनुनासिक + स्पर्शेतर :</u>

न् + य् - न्यारा 38-7 (मन)

न् + ह् - न्हाट 197-2 (से), 22-8 (कु) 112-13 (सव)

न् + ह् - न्हाल 94-7 (कु)

म् + य् - म्यान 37-13 (सव)

म्+ल् - म्लेच्छ 65-19 (पि.ना.)

म् + ह् - म्हाडी 173-17 (सव)

4.1.5. स्पर्शेतर + स्पर्शेतर :

ल् + य् - ल्यानहार 144-13] कुतु]

ल् + ह् - ब ल्हाफ 33-9] मन]

व् + य् - व्याधि 152-14] हि.ना.]

व् + ह् - व्हां 21-4] हि.ना.]

श् + य् - श्यामल 69-26] हि. ना.]

स + व - स्वयंभु 36-14] हि. ना.]

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि स्पर्श + स्पर्शेतर व्यंजन-संयोग की आदि स्थिति में द्वितीय व्यंजन अंतस्त ही है, विशेषतः "य्" और "व्" । स्पर्शेतर + स्पर्श के जो उदाहरण मिलते हैं वे संस्कृत होती हैं । खासकर ये उदाहरण "श्री पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक" में ही मिलते हैं, जो तेलुगु भाषी के रचनाएँ हैं । अनुनासिक + स्पर्शेतर व्यंजन-संयोग में द्वितीय व्यंजन "य्" "ह्" और "ल्" ही मिलते हैं ।

4.2. मध्य स्थानीय व्यंजन-संयोग :

दक्खिनी हिन्दी में मध्य स्थानीय व्यंजन-संयोग की बहुलता है । इस मध्य संयुक्त व्यंजन के अन्तर्गत प्राप्त उदाहरणों के आधार पर निम्नलिखित आठ वर्ग उभरते हैं -

4.2.1. स्पर्श + स्पर्श :

क् + ख् - दक्खनी 75-7] कुतु]

क् + त् - मुक्ता 1-4] मन]

ख् + त् - सख्ती 179-11] से]

ख् + त् - बख्तवर 26-2 (से)

ग् + ध - अनुग्धर 19-15 (पि० ना०)

च् + छ् - अच्छर 1-8 (सप्त)

त् + प् - समुत्पन 150-4 (पि० ना०)

प् + त् - प्राप्ति 109-19 (पि० ना०)

फ् + त - गुफ्तार 45-2 (मन)

ब् + ज - अब्जां 97-27 (पि० ना०)

स् + त - मुस्तदी 17-10 (से)

ब् + द - मुब्दाई 70-4 (कु.)

ब् + ध - मुब्धाई 54-5 (से)

4.2.2. स्पर्श + स्पर्शेतर :

क् + य् - सक्या 78-14 (कु.)

क् + ल् - अक्ल 149 - 4 (सब)

क् + व् - तक्वा 58-6 (सब)

क् + स - तक्सीर 62-9 (से), 43-22 (पि० ना०)

ख् + य् - सख्या 121-24 (सब)

ग् + र - अग्रज 187-15 (पि० ना०)

ग् + य् - लग्या 19-10 (से)

च् + व - बच्वा 3-4 (कु.)

ज् + य् - नराज्यां 35-15 (से)

ड् + य - पड्या 184-10 (कु.)

द् + य - सद्या 28-3 (से)

द् + य् - उद्या 119-3 ﴾कतु﴿
त् + य् - परित्याग 153-15 ﴾ पि.ना. ﴿
त् + व् - सत्वर 251 - 5 ﴾ पि.ना. ﴿
द् + र् - निद्रा 34-26 ﴾ पि.ना. ﴿
प् + य् - आत्यायता 46-6 ﴾ पि.ना. ﴿
ब् + ज् - अब्जयोनी 36-14 ﴾ मन ﴿
ब् + य् - कुब्या 157-21 ﴾ से ﴿
ब् + र् - पिब्रेल 18-3 ﴾ कतु ﴿
ब् + ल् - शिब्ली 187-12 ﴾ सब ﴿

4.2.3. <u>स्पर्शेतर + स्पर्श :</u>

र् + क् - तर्कश 111-17 ﴾सब ﴿
र् + ख् - मुर्खत 56-10 ﴾ कतु ﴿
र् + छ - मूर्छागत 14-2 ﴾ पि.ना. ﴿
र् + ज - दर्जे 39-19 ﴾ से ﴿
र् + ड - कोर्डा 49-7 ﴾ पि.ना. ﴿
र् + द - मुर्दा 10-8 ﴾ मन ﴿
र् + प् - दर्पन 29-12 ﴾ कतु ﴿
ल् + क् - गुल्क 180 - 11 ﴾ कतु ﴿
श् + क् - मुश्किल 131-5 ﴾ सब ﴿
श् + त् - मुश्ताक 79-20 ﴾ सब ﴿
ष् + ट - सृष्टि 75-15 ﴾ पि.ना. ﴿
स् + क् - भास्कर 49-1 ﴾ पि.ना. ﴿,
36-10 ﴾ मन ﴿
स् + ज् - मस्जिद 12-25 ﴾ सब ﴿

स् + त् - रुस्तम 22-20 (से)

स् + त् - दोस्ती 97-8 (हि.ना.)

स् + ट् - गुल्स्टोम 1-1 (सय)

4.2.4. <u>अनुनासिक + स्पर्शेतर :</u>

ण् + ड् - माण्ड्या 123-13 (कृ.)

न् + य् - पठान्या 169-1 (सब)

न् + स् - इन्साफ 35-21 (कृ.)

न् + ह् - पिन्हाँ 33-4 (सय)

म् + ज् - गुम्जा 127-22 (सब)

म् + य् - दरम्याँ 70-20 (से)

म् + य् - मुलुम्याँ 30-13 (से)

म् + ह् - तुम्हारा 69-5 (हि.ना.)

4.2.5. <u>अनुनासिक + स्पर्श :</u>

ण् + ट् - कुण्टल 71-3 (कृ.)

न् + त् - अन्तर 153-16 (से)

न् + द् - मन्दिर 9-3 (मन)

न् + ध् - सुन्धरियाँ 47-11 (कृ.)

म् + प् - परम्परा 40-5 (मन)

म् + ब् - पयम्बर 36-15 (मन)

म् + भ् - सम्भाल 78-9 (कृ.)

4.2.6. <u>स्पर्श + अनुनासिक :</u>

व् + न् - धुन्नारा 55-8 (ते)

व् + म् - आत्मा 12-17 (मन)

द् + म् -पद्मिनी 129

4.2.7. <u>स्पर्शेतर + अनुनासिक :</u>

ह् र् + म् - पर्माता 64-19 (पि.ना.)

र् + म् - गर्मा 173-2 (सव)

ल् + म् - अल्मास 70-1 (सव)

श् + म् - धुश्मन 27-6 (सै) 110-4 (सव)

ष् + ण् - जिष्णु 242-24 (पि.ना.)

ष् + म् - दानिष्मंद 69-4 (पि.ना.)

स + म - नामस्मरण 55-27 (पि.ना.)

4.2.8. <u>स्पर्शेतर + स्पर्शेतर :</u>

र् + य् - पुकार्यो 67-14 (सव)

र् + व् - सर्वर 101-5 (से)

र् + श् - मुर्शिद 9-20 (सव)

र् + स् - पुर्सत 202-2 (सव)

ल् + य् - कल्यान 135-3 (पि.ना.)

ल् + ह् - मुअल्हनम 14-10 (कृ)

श् + व् - रिश्वत 29-8 (मन)

ह् + य् - कह्या 135 - 13 (कृ)

4.3. त्रि-व्यंजनात्मक संयोग :

दक्खिनी हिन्दी में त्रि-व्यंजनात्मक संयोग के उदाहरण कम मात्रा में मिलते हैं। प्राप्त हुए उदाहरण इस प्रकार है :-

न् + द् + र	-	रामचन्द्र 65-1 (पि.ना)
न् + ध् + य	-	बीन्ध्यां 203-14 (सब)
र् + त् + य	-	मर्त्याली 20-14 (पि.ना)
र् + थ् + य	-	सामर्थ्य 80-11 (पि.ना)
र् + म् + य	-	दर्म्यान 43-9 (मन)
ग् + त् + य	-	कबत्यां 70-9 (से)
ष् + ट् + य	-	दोष्ट्यां 68-12 (पि.ना)
स् + ख् + त्	-	चपिस्खत्न 122-13 (सब)
स् + त् + र	-	स्त्री 102-8 (पि.ना)

4.4. अन्त्य व्यंजन - संयोग :

आलोच्य भाषा में प्राप्त उदाहरणों के आधार पर इस वर्ग के नौ भेद मिलते जिनकी वर्गीकृत सूची इस प्रकार है।

4.4.1 स्पर्श + स्पर्श :

क् + ख	-	सुक्ख 123-5 (कुतु)
क् + त	-	वक्त 159-4 (पि.ना)
ख् + त	-	सख्त 55-15 (से)
द् + ध	-	उद्ध: 21-21 (कुतु)
प् + त	-	संतृप्त 86-5 (पि.ना)
फ् + त	-	हफ्त 24-16 (मन)

4.4.2. स्पर्श + स्पर्शेतर :

क् + फ – वक्फ 10-7 (कु)
क् + र – पिक्र 10-21 (कु)
ख + ख – रख्खा 201-3 (से)
ग् + य् – सौभाग्य 32-3 (हि.ना)
घ + र – यघ्र 80-1 (सब)
त + र – चित्र 141-11 (कु)
द + य् – दैत्य 69-27 (हि.ना)
द + र – मछेन्द्र 204 – 6 (से)
ध + य् – असाध्य 26-1 (हि.ना)
भ् + य् – लभ्य 19-15 (हि.ना)
भ + र – शुभ्र 161-2 (हि.ना)

4.4.3. स्पर्श + अनुनासिक :

क् + म् – रुक्म 26-15 (से. 181-19 (कु)
ख + म् – जख्म 139-1 (सब)
ज् + म् – मज्म 219-15 (से)
*

4.4.4. अनुनासिक + स्पर्श :

ण् + ड – कुण्ड 106-9 (कु)
खण्ड 74-2 (कु)
न् + त – गुणवन्त 50-5 (मन)

म् + द - खिरदमन्द 186 - 4 (से)
म् + द - परजन्द 151-6 (सब)

4.4.5. <u>अनुनासिक + अनुनासिक :</u>

न् + म् - जन्म 65-24 (पि.ना)
म् + न् - अम्न 167-7 (से)

4.4.6. <u>स्पर्शेतर + अनुनासिक :</u>

र् + ण् - परिपूर्ण 18-12 (पि.ना.)
र् + म् - गर्म 16-8 15 (से)
ल् + म् - इल्म 14-17 (कृत)
श् + म् - पुश्म 75-1 (सब)
स् + म् - जिस्म 10-11 (कृत)

4.4.7. <u>अनुनासिक + स्पर्शेतर :</u>

ण् + य् - अरण्य 217 -1 (पि.ना.)
न् + य् - शून्य 45-14 (मन)
न् + स् - जिन्स 9-3 (सब)
म् + र् - उम्र 64-3 (सब)

4.4.8. <u>स्पर्शेतर + स्पर्श :</u>

ज् + ग - पिजड़ा 5-13 (कृत)
र् + ग् - बुजुर्ग 49-13 (पि.ना.)

र् + घ - अर्घ 91-27 (चि.ना.)

र् + ध - सकलार्थ 75-6 (चि.ना.)

र् + द - मर्द 161-7 (से)

र् + ब - कुर्ब 87-13 (सब)

ल् + क् - मुल्क 23-4 (से)

ल् + क् - अल्क 42-14 (से)

ल् + प् - स्वल्प 31-10 (चि.ना.)

ल् + ब् - कल्ब 10-8 (कुतु)

श् + क् - अश्क 20-18 (से)

श् + त - कश्ति 9-20 (कुतु)

ष् + ट - अभीष्ट 262-20 (चि.ना.)

ष् + प् - पुष्प 178-10 (चि.ना.)

स् + त् - मस्त 30-19 (सब)

स् + थ - गृहस्थ 21-2 (चि.ना.)

4.4.9. <u>स्पर्शेतर + स्पर्शेतर :</u>

ग़ + ज़ - मग़ज़ 7-8 (कुतु)

फ़ + र - कुफ्र 39-4 (मन)

फ़ + ल् - कुफ़्ल 6-6 (कुतु)

फ़ + स् - नफ़्स 53-18 (चि.ना.)

र + ग़ - अर्ग़ 23-1 (से)

र + फ़ - शर्फ़ 35-19 (सब)

र + य् - कृतकार्य 16-12 (चि.ना.)

र + श् - फर्श 19-9 (कुतु)

र + स् - फिर्स 11-9 (मन)

य् + य् – अदृश्य 199–2 {दि॰ना॰}
ष् + य् – मनुष्य 35–15 {दि॰ना॰}

4.5. द्वित्व व्यंजन :

द्विव्यंजनात्मक संयोग के मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग के अन्तर्गत ही द्वित्व व्यंजन आते हैं । आरम्भिक स्थिति में एक मात्र उदाहरण मिलता है । अंत्य स्थिति में इसकी व्यवस्था नहीं है, कारण यही है कि अंत्य द्वित्व व्यंजन का अस्तित्व स्वर के बिना नहीं है । दक्खिनी हिन्दी में इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में है । कुछ उदाहरण वर्गीकृत रूप में द्रष्टव्य हैं –

4.5.1. अल्पप्राण + अ

4.5.1. अल्पप्राण + अल्पप्राण :

क् + क् – दुक्कान 30–12 {कु॰}
ग् + ग् – दृग्गोचर 250–13 {दि॰ना}
च् + च – बच्चे 22–23 {दि॰ना}
ज् + ज – लज्जत 175–15 {सब}
ट् + ट् – पट्टाभिषेक 16–2 {दि॰ना}
त् + त 5 अलबत्ता 110–1 {सब}
त् + त – पत्ता 15–15 {दि॰ना}
द् + द – नद्दी 134–1 {दि॰ना}
न् + न् – जन्नत 62–4 {से}
न् + न् – सुन्ना 129–3 {कु॰}

प् + प्	-	कुप्पन	81-6 [कु]
ब् + ब्	-	मोहब्बत	69-4 [से]
ब् + ब्	-	अब्बी	252-20 [हि॰ना]

4.5.2 अल्पप्राण + महाप्राण :

क् + ख	-	दक्खनी	75-7 [कु]
च् + छ	-	बच्छा	250-2 [हि॰ना]

4.5.3. महाप्राण + महाप्राण

झ् + झ	-	मुझझअर	3-2 [कु]

4.5.3 अन्य द्वित्व व्यंजन

म् + म्	-	हिम्मत	103-8 [से]
य् + य्	-	तय्योर	62-2 [से]
र् + र्	-	मुकर्रर	219-18 [हि॰ना]
ल् + ल्	-	अल्लाह	36-5 [कु]
व् + व्	-	गुव्वारा	34-16 [से]
स् + स्	-	वस्सलाम	11-14 [से]

उपरोक्त वर्गीकृत तालिका में मध्य व्यंजन द्वित्व की स्थिति को देखा जा सकता है । इसके अतिरिक्त आदि द्वित्व व्यंजन का एक मात्र उदाहरण प्राप्त है । यथा -

व् + व्	-	व्वही	5-18 [मन]

र संयोग स्थिति - तालिका

व्यंजन गुच्छ

ख	ख़	ग	ग़	घ	ङ	च	छ	ज	ज़	झ	ञ ट	ठ	ड	ढ़	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ	फ़	ब	भ	म	य	र	ल	व	श
×																×										×	×	×	×	×	
																						×					×				
×																×										×	×			×	×
																×															
		×																	×								×	×			
									×																						
																														×	
						×	×																								
×								×																							
												×															×				
																											×				
			×																								×				
												×		×													×				
																	×			×	×					×	×	×	×		
																			×							×		×			
																											×				
																	×		×	×	×					×	×				
																	×				×						×	×			
																	×														
																												×	×		
									×								×		×	×					×		×	×	×		
																										×	×	×			
									×												×	×					×	×	×		
																											×				
×		×	×			×	×	×						×		×		×	×			×		×	×	×	×	×			×
																									×		×		×		
																											×				×
																										×	×				
												×			×						×					×					
									×							×	×			×	×	×				×					×

5. ध्वनि परिवर्तन की दिशाएँ :

भाषा परिवर्तनशील है । भाषा प्रवाह में ध्वनि परिवर्तन होना स्वाभाविक है । किसी भाषा में ध्वनि परिवर्तन उच्चारण की सुविधा बोलने में शीघ्रता, बलाघात, विदेशी ध्वनियों का अपनी भाषा में अभाव आदि कारणों से होते हैं । ध्वनि परिवर्तन की दिशाओं पर विचार करते समय सामान्यतः आगम, लोप, विपर्यय तथा विकार आदि दिशाओं पर ध्यान दिया जाता है । साहित्यिक दक्खनी हिन्दी में उपरोक्त ध्वनि परिवर्तन के सभी रूप प्राप्त है । इन ध्वनि परिवर्तनों पर विश्लेषण आगे प्रस्तुत है ।

5.0 स्वर :

5.1. आगम :

आगम के दो रूप मिलते है - स्वरागम, व्यंजनागम ।

5.1.1. [स्वरागम :

साहित्यिक दक्खनी हिन्दी में आदि, मध्य और अन्त्य स्वरागम की स्थितियाँ मिलती है । आदि और अन्त्य स्वरागम के उदाहरण कम मिलते हैं ।

5.1.1.1. आदि स्वरागम :

माँ	>	अम्मा	87-22 [सब]
स्थान	>	अस्थान	16-4 [मन]
स्तुत	>	अस्तुत	46-9 [मन]

स्नान > अस्नान 222-3 {हि॰ना॰}
स्पर्श > इसपरस 37-1 {मन}
स्मरण > इसमरन 44-14 {मन}
स्त्री > इस्तरी 98-22 {सब}

5.1.1.2 मध्य स्वरागम :

दक्खिनी हिन्दी में मध्य स्वरागम के अन्तर्गत स्वर भक्ति की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है । इस प्रवृत्ति के अलावा मध्य स्वरागम + व्यंजन द्वित्वीकरण, मध्य स्वरागम + व्यंजन समीकरण + समीकृत व्यंजन पुनरागमन की प्रवृत्ति भी पायी जाती है ।

{क} स्वर भक्ति :

स्वर भक्ति में कहीं-कहीं स्वर भक्ति के साथ अंत्य व्यंजन में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति और कहीं द्वित्व व्यंजन लोप की प्रवृत्ति भी है ।

"अ" संबंधित स्वरभक्ति के उदाहरण :

मूर्ख > मूरक 7-18 {सब} यहाँ ख क की प्रवृत्ति है ।
रत्न > रतन 4-10 {से}
जन्म > जनम 3-11 {सब}
अर्ज > अरज 9-5 {हि॰ना॰}
कर्म > करम 24-2 {सब}
खर्च > खरच 44-25 {हि॰ना॰}

कर्म > गरम 155-9 (कुतु)
त्रिकुटी > तिरकुटी 15-7 (मन)
त्रिलोक > तिरलोक 31-2 (कुतु)
दर्द > दरद 56-20 (से)
धर्म > धरम 24-20 (सब)
प्रधान > परधान 65-22 (से)
प्राण > परान 82-2 (से)
शर्म > शरम 13-2 (सब), 144-19 (कुतु)

"आ" संबंधित स्वर भक्ति :

सत्य > सात 9-1 (कुतु)
(हिन्दी की कुछ बोलियों में सत्य साँच की प्रवृत्ति मिलती है।)

"इ" से संबंधित स्वरभक्ति के उदाहरण :

सन्यासी > सनियासी 19-1 (मन)
प्यारी > पियारी 67-14 (से)
प्रीत > पिरित 60-11 (से)

"अ" <u>स्वरागम + व्यंजनद्वित्व</u>

रत्न > रतन 35-12 (पि.ना.)
जत्न > जत्तन 37-7 (पि.ना.)
यत्न > यतन 187-13 (पि.ना.)

§ग§ स्वरागम + समीकरण + समीकृत व्यंजन पुनरागमन :

यथा – पवित्र > पवित्त + अर पवित्तर ।

पात्र > पात्तर 64-12 §दि•ना•§

पवित्र > पवित्तर 35-1 §दि•ना•§

मात्र > मात्तर 14-24 §दि•ना•§

विचित्र > विचित्तर 101-8 §सब§

उपरोक्त परिशीलन से यह स्पष्ट है कि स्वरभक्ति की प्रवृत्ति "र", "व" "य" के साथ ही मिलती है । दीर्घ स्वर के ह्रस्वकरण की प्रवृत्ति भी मिलती है –

प्रीत > पिरित ।

5•1•1•3• अन्त्य स्वरागम :

अ – चन्द्र > चन्दर 8-9 §मे§, 25-7 §मन§, 11-14 §सब§

आ – दुबाल > दुबाला 47-4 §सब§

ई – मा > माई 170-9 §मे§, 50-23 §सब§

किस्त > किस्ती 36-10 §दि•ना•§

5•1•2• स्वर लोप :

दक्खिनी हिन्दी में आदि स्वर लोप की प्रवृत्ति नहीं मिलती है । लेकिन मध्य और अंत्य स्वरलोप की स्थिति है ।

§क§ मध्य स्वर लोप :

अ - माहवार > महवार 28-18 § चि.ना.§
इ - हथियार > हत्यार 58-25 §चि.ना.§
उ - महापुरूष > महापुर्ष 15-4 §मन§

§ख§ अन्त्य स्वर लोप :

आ - झगड़ा > झगड़ 111-8 §सव§
परम्परा > परम्पर 39-5 §मन§
सपना > सपन 44-13 §मन§

इ - रुचि > रुच 144-6 §सव§
सुधि > सुद 170-23 §से§

ई - धरती > धरत 7-7 §से§, 4-6 §कृ§
नदी > नद 4-5 §मन§
नारी > नार 83-22 §कृ§

उ वस्तु > वस्त 28-15 §सव§

उपरोक्त उदाहरणों के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि अन्त्य स्वरलोप के साथ द्वित्व व्यंजन में एक व्यंजन के लोप की प्रवृत्ति भी है और स्वर विपर्य भी द्रष्टव्य है । यथा - पत्ता > पात । कहीं-कहीं अंत्य स्वरलोप के साथ अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति भी है - सुधि > सुद ।

5.1.3. स्वर संधि :

दो स्वरों के बीच में संधि होने से शब्द की ध्वनि संरचना में परिवर्तन होता है । इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते हैं, किन्तु प्रवृत्ति निरूपण की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण दिशा है ।

अ + इ = ऐ - भाई > भै 55-21 {मि.ना.}

5.1.4. स्वरादेश :

आ ई - उजाना > उजीना 2-1 {से}
इ अ - छिपाकर > छपाकर 78-11 {मि.ना.}
इ आ - मिट्टी > माटी 96-26 {मि.ना.}
ई अ - पीछे > पछे 79-6 {कतु}
उ अ - उंगली > अंगली 188-3 {सब}
उ आ - चतुर > चातर 10-17 {मन}
उ इ - मुलाकात > मिलाकत 6-10 {मि.ना.}
उ औ - बहुत > बहौत 56-8 {मन}
ऊ औ - कौड़ी > औंती 128-10 {से}
ए अ - केवत्तर > कबत्तर 103-10 {सब}
ए आ - अंधेरा > अंधारा 53-6 {कतु}
ए इ - बेचारा > बिचारा 31-22 {सब}
ओ अ - कोशिश > कशिश 102-24 {कतु}
ओ उ - सोना > सुना 42-4 {कतु}
ओ उ - होशियार > हुशयार 50-13 {कतु}, 4-16 {मन}
ओ ऊ - छछोरो > छछूरो 49-12 {सब}

5.1.5. स्वर विपर्यय :

ओहदा > हौदा 92-21 (चि.ना.)

जान्वर > जनावर 83-2 (से), 144-6 (सब)

5.1.6. ह्रस्वीकरण :

ह्रस्वीकरण की प्रवृत्ति शब्द के आदि और मध्य स्वरों में ही अधिक दिखाई देती है । अंत्य में सिर्फ एक ही उदाहरण प्राप्त है ।

आदि :

आ > अ - आसमान > असमान 37-8 (कु), 246-18 (चि.ना.)

आनन्द > अनन्द 71-19 (सब), 36-3 (से), 39-10 (कु)

आधार > अधार 10-1 (कु)

मध्य : इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत ह्रस्वीकरण के साथ व्यंजनागम भी हुआ है । यथा - चींटी > चिमटी । कहीं-कहीं ह्रस्वीकरण के साथ अंत्य व्यंजन महाप्राणीकरण भी हुआ है । यथा -

सूत्र > सुक

आ > अ - बाजार > बजार 157-21 (चि.ना.)

निगाह > निगह 36-23 (चि.ना.)

माँग > मँग 13-21 (से) (चि.ना.)

लाख > लख 2-10 (से)

राह > रह 27-7 (चि.ना.)

	विभाजन > विभजन 9-13 (वि.ना.)
	पासर > परस 37-2 (मन)
	बादल > बदल 5-14 (कृ)
ई > इ	तीसरा > तिसरा 86-1 (कृ)
	भीतर > भितर 77-4 (से), 93-18 (कृ)
	मीठा > मिठा 12-11 (मन)
	प्रीत > पिरत 49-14 (मन)
	चींटी > चिमटी 28-20 (सब)
ऊ > उ	मूलाधार > मुलाधार 15-13 (मन)
	सूरज > सुरज 25-4 (से)
	सूख > सुक 149-4 (कृ)
	बूढा > बुढा 216-20 (से)
अन्त्य :	नहीं > नईं 36-15 (वि.ना.)

5.1.6. <u>दीर्घीकरण :</u>

स्वर दीर्घीकरण सिर्फ शब्द के मध्य और अंत्य में ही हुआ है । कहीं एक आध उदाहरण में दीर्घीकरण + अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति दिखाई देती है । यथा - दुःख > दूक । दीर्घीकरण की प्रवृत्ति का बाहुल्य सिर्फ "उ" "ई" में ही है ।

मध्य :

इ > ई	अधिक > अदीक 52-18 (से)
	सिर > सीर 150-10 (सब)

हासिल > हासील 171-6 (कुतु)

पिर > फीर 41-17 (से)

मंदिर > मंदीर 141-18 (से)

उ > ऊ पुरुष > पूरुष 245-13 (हि.ना.)

चुन > चून 148-16 (से)

सुन > सून 173-8 (कुतु)

दुख > दूक 124-16 (से)

अंत्य : भूमि > भूमी 84-12 (सब)

5.2. <u>व्यंजन :</u>

5.2.1. <u>व्यंजनागम :</u>

आदि, मध्य और अन्त्य व्यंजनागम की प्रवृत्ति दक्खिनी हिन्दी में मिलती है ।

(क) आदि :

य् - अकेला > यकेला 72-19 (कुतु)

एकाएक > यकायक 11-22 (सब)

ह् - इशारा > हिशारा 105-4 (हि.ना.)

और > हौर 5-7 (से), 3-9 (मन)

और > हौर 162-4 (सब)

(ख) मध्य :

म् - चींटी > चिमटी 28-15 (सब)

व् - लोहा > लहवा 162-18 (सब)

लोहार > लहवार 119-15 §सब§

य् - हरा > हरया 2-11 §से§

§ग§ अन्त्य :

व् - धो > धोव 170-10 §कुतु§

स् - एक > एकस 170-16 §से§ 3-4 §सब§

5.2.2. <u>व्यंजन लोप :</u>

व्यंजन लोप में आदि व्यंजन लोप की अपेक्षा मध्य और अन्त्य व्यंजन लोप की बहुलता है ।

§क§ आदि :

र् - रुभाये > भाये 96-5 §से§

स् - स्नेह > नेह 109-24 §कुतु§

§ख§ मध्य :

द् - नजदीक > नजिक 29-5 §से§

न् - जितना > जिता 14-14 §से§

य् - नयन > नैन 53-1 §से§

बयान > बैन 63-19 §सब§

व् - अवतार > औतार 12-13 §से§, 44-9 §कुतु§

गोविंद > गोबिंद 6-14 §मन§

दिवस > दीस 8-2 §से§

परमेश्वर > परमेसर 2-2 §मन§

बेवकूफ > बेकूब 44-11 §हि.ना.§

स्वरूप > सरूप 87-14 §से§

ह् - कहना > कना 113-7 (से)

कहकर > ककर 135-22 (कुतु)

ठहरता > ठारता 9-7 (मन)

पहचान > पछान 56-17 (से)

पहाड > पाड 92-12 (से)

पहन > पैन 71-13 (कुतु)

बाहर > भार 16-8 (से)

बहन > भान 98-4 (कुतु)

बहुगुण > भोगुण 30-21 (से)

यहाँ > याँ 214-12 (चि.ना.)

वहाँ > वाँ 123-3 (कुतु)

साहब > साब 46-7 (चि.ना.)

शहर > शार 133-22 (से)

कंगही > कंगोई 94-18 (कुतु)

उपरोक्त उदाहरणों के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि मध्य व्यंजन लोप के साथ कहीं-कहीं महाप्राणीकरण भी हुआ है । यथा - पहचान > पछान । मध्य व्यंजन लोप की प्रवृत्ति "व" "ह" ध्वनियों में अधिक मिलती है ।

(ग) अंत्य :

ज् - सूरज > सूर 79-23 (कुतु)

त् - बहुत > भौ 112-3 (कुतु)

म् - भूमि > भुइ 169-16 (कुतु), 120-4 (सब)

जन्म > जन 24-29 (चि.ना.)

य् - सत्य > सत 39-9 (सब)

भाग्य > बाग 138-2 (से)

ह् - चौदह > चौदा 14-3 {कुतु} 111-1 {सब}

तसबीह > तसबी 18-7 {मन}

बारह > बारा 54-3 {पि॰ना॰}

मुह > मूँ 13-12 {सब}

सुबह > सुबा 11-3 {मन}

सराह > सरा 173-3 {से}

उपरोक्त उदाहरणों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि अंत्य व्यंजन लोप के साथ कहीं अल्पप्राणीकरण, कहीं महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति है । यथा - बहुत > भी ।

भाग्य > बाग ।

{घ} स्वर + व्यंजन लोप :

घ स्वर + व्यंजन लोप

श्मसान > मन्स	44-10 { मन }	{ क्रमशः आ॰ न् लोप }
देवालय > देवल	44-5 { पि॰ना }	{क्रमशः आ॰ य् लोप }
मछली > मची	39-9 {मन}	{ क्रमशः अ, ल् लोप }

इस प्रवृत्ति के साथ अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

5.2.3 अल्पप्राणीकरण :

दक्खिनी हिन्दी में अल्पप्राणीकरण की प्रवृत्ति आदि, मध्य और अन्त्य स्थितियों में मिलती है ।

(क आदि :

फ > प - फराख्त > पराक्त 24-28 {हि॰ना}

(ख) मध्य :

ख > क - नखरा > नकरा 48-14 {हि॰ना}

भिखारी > भिकारी 35-6 {कु}

सुखी > सुकी 8-6 {से}, 155-16 {सब}

घ > ग - घूँघट > घूँगट 19-18 {सब}

पिघल > पिगल 172-20 {से}

ठ > ट - बठोला > बटोला 199-13 {से}

ध > द - साधन > सादन 120-4 {सब}

अधिक > अदिक 41-21 {कु}

लुब्धाया > लुब्दाया 6-2 {कु}

आधा > आदा 49-10 {हि॰ना}

अन्धकार > अन्दकार 15-19 {कु}

(ख) - (अ) <u>मध्य व्यंजन में अल्पप्राणीकरण + स्वरलोप :</u>

भ > ब आभरण > अबरन 108-10 {से}

(ग) अन्त्य :

ख > क भूख > भूक 120-3 {सब}, 5-11 {कु}

अलख > अलक 2-1 {मन}

लाख > लाक 27-1 {कु}

घ > ग	मेघ > मेग	71-5 {से}
छ > च	कुछ > कुच	6-22 {कु}
झ > ज	समझ > समज	65-17 {से}
ठ > ट	मठ > मट	15-1 {मन}
ढ > ड	गढ़ > गड	66-18 {से}
थ > त	हाथ > हात	8-12 {से}, 26-6 {कु}, 4-8 {मन}
	पन्थ > पन्त	1-18 {से}, 11-17 {कु}
	जगन्नाथ > जगन्नात	19-2 {मन}
ध > द	दूध > दूद	12-9 {मन}
	सुध > सुद	7-15 {मन}
	बाँध > बाँद	50-18 {सब}, 8-7 {मन}
	सुगंधि > सुगंद	181-16 {सब}
भ > ब -	जीभ > जीब	23-1 {से}

(अ) ~~अंश~~ अल्प उष्मप्राणीकरण + स्वरागम

भ > ब + अ   गर्भ > गरब   155-9 {कु}

5.2.4. महाप्राणीकरण :

महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति आदि और मध्य स्पर्श व्यंजनों में ही पायी जाती है ।

(क) आदि :

क > ख   कंधा > खांदा 7-10 (से)

(यद्यपि इसका मूल संस्कृत शब्द स्कंध है फिर भी यहाँ मूल शब्द के रूप में कंधा ही लिया जा सकता है)

च > छ   चुप > छुप 220-9 (वि॰ना)
ज > झ   जुटाले > झुटाले 85-11 (कुतु)
प > फ   पसंद > फसंद 53-8 (वि॰ना)

महाप्राणीकरण + व्यंजन लोप :

यह प्रवृत्ति उन्हीं शब्दों में पायी जाती है, जिनमें द्वितीय व्यंजन "ह्" है। यहाँ "ह्" लोप के साथ स्वर संधि की प्रवृत्ति भी विशेष उल्लेखनीय है।

ब > भ   बहन > भान 138-14 (से), 68-17 (कुतु)
बाहर > भार 141-4 (से), 2-10 (मन)
बहुत > भौत 130-10 (कुतु), 3-3 (सब)
बहाना > भाना 115-15 (कुतु)

(ख) मध्य :

क > ख   तठाका > तठाखा 53-23 (वि॰ना)
ज > झ   उजाड > उझाड 16-9 (वि॰ना)
द > ध   मंदिर > मंधिर 10-11 (कुतु)
सुंदर > संधर 64-21 (कुतु)

मध्य व्यंजन महाप्राणीकरण + व्यंजन लोप :

इस स्थिति में अल्पप्राणीकरण ध्वनि से पहले " ह् " की स्थिति मूल में होती है ।

च > छ   पश्चात > पछात 28-5 (कु)

5.2.5. सघोषीकरण :

सघोषीकरण की प्रवृत्ति सिर्फ एक ही ध्वनि में हुई है । सघोषीकरण प्रवृत्ति के साथ कहीं स्वरागम भी हुआ है । यथा -

वर्षाकाल   वरसगाल ।

क > ग	शोक > सोग	6-15	(मन)
	प्रकट > प्रगट	10-3	(कु)
	सकल > सगल	12-9	(से)
	वर्षाकाल > वरसगाल	71-6	(से)

5.2.6. अघोषीकरण :

अघोषीकरण शब्द के आदि, मध्य और अन्त्य व्यंजन में हुआ है । उदाहरण दृष्टव्य है ।

आदि :

ब > प	बादशाह > पादशाह	103-3	(सब)
ब > फ	बादशाह > फादशाह	40-9	(पि.ना)

<u>मध्य :</u>

ग > क   जगह > जगा   जका 4-3 (से)
मगद > मक्द 50-26 (चि.ना)

ब > प   उबटन > उपटन 23-4 (मन)

<u>अन्त्य :</u>

ग > क   लोग > लोक 162-5 (सब) (लोग के अर्थ में लोक प्रयुक्त है)
संभोग > संभोक 192-16 (कु)

5.2.7. दंत्यीकरण :

दंत्यीकरण की प्रवृत्ति मूर्धन्य ध्वनियों के साथ ही पायी जाती है ।

ट > त	टुकडा > तुकडा 32-16 (मन), 103-2 (सब)
ठ > थ	ठंड > थण्ड 74-2 (कु)
ड > द	डेढ़ > देढ़ 28-27 (चि.ना)
ढ़ > ध	दृढ़ता > धृढ़ता 3-18 (कु)
ण > न	कारण > कारन 30-22 (से), 62-9 (कु)
	गुण > गुन 7-12 (सब)
	चरण > चरन 14-6 (मन) 200-5 (से)
	दर्पण > दरपन 29-12 (कु)
	प्राण > प्रान 113-22 (से)
	रण > रन 25-12 (सब)
ष > स	पुरुष > पुरुस 2-17 (सब)

5.2.8. मूर्धन्यीकरण :

यह प्रवृत्ति सिर्फ थ, स, श ध्वनियों के साथ ही मिलती है ।

थ > ट   पंथ > पंट 55-22 ॥ से ॥

थ+स > ठ   स्थल > ठार 121-12 ॥कु॥, 99-8 ॥ से ॥

श > स   निशा > निसा 162-20 ॥ चि.ना ॥

बादशाह > पादुसा 30-5 ॥ चि.ना ॥

5.2.9. कंठ्यीकरण :

इस प्रवृत्ति का एक ही उदाहरण प्राप्त है ।

त > क   सौतन > सौकन 176-19 ॥सव॥

5.2.10. नासिक्यीकरण :

इस प्रवृत्ति की दो स्थितियाँ मिलती हैं । प्रथम स्थिति में आदेश की प्रवृत्ति है तो द्वितीय स्थिति में अनुनासिक व्यंजन लोप भी है ।

ø > ँ – ऊ छली > ऊँछली 230-16 ॥ चि.ना ॥

ं > ँ – अंग > आँग 35-17 ॥चि.ना॥

न > ँ – आसमान > आसमाँ 90-24 ॥सव॥

जान > जाँ 20-4 ॥मन॥

जबान > जबाँ 1-5 ॥मन॥

जमीन > जमीँ 2-11 ॥से॥, 23-8 ॥कु॥

निशान > निशाँ 160-21 (कु)
मकान > मकाँ 97-5 (से)
मुसलमान > मुसलमाँ 26-8 (से)
मेहमान > मेहमाँ 6-7 (मन)
समान > समाँ 94-15 (कु), 299-25 (पि॰ना)

म > ब॰ँ कमल कँवल 69-17 (सब)
भ्रमर भँवर 168-13 (सब)

5.2.11. द्वित्वीकरण :

" व्यंजन योग " शीर्षक के अन्तर्गत इसका विश्लेषण विस्तृत रूप से किया गया है । यहाँ प्रवृत्ति निरूपण के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत है ।

स्पर्श + स्पर्श

क + क दुकान > दुक्कान 30-12 (कु)
ग + ग सगा > सग्गा 60-12 (पि॰ना)
द + द नदी > नद्दी 134- 1 (पि॰ना)
ब + ब अभी > अब्भी 252-20 (पि॰ना)

अनुनासिक + अनुनासिक :

न + न सोना > सुन्ना 128-2 (कु)
अनार > अन्नार 153-22 (कु), 113-19 (से)
म + म नमक > नम्मक 48-12 (पि॰ना)

स्पर्शेतर + स्पर्शेतर :

ल + ल गुलाब > गुल्लाब 106-12 (कु)

5.2.12. समीकरण :

समीकरण में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं -

व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वर दीर्घीकरण, व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वर - दीर्घीकरण + अंत्य स्वर लोप । जहाँ शब्द में पूर्व स्वर पहले से मौजूद है वहाँ दीर्घीकरण की प्रवृत्ति नहीं मिलती है ।

(क) व्यंजन समीकरण + पूर्वस्वरदीर्घीकरण :

अग्नि > अग्गि > आगि > आग 168-11 (कुतु)
कर्म > कम्म > काम 1-9 (मन), 70-4 (कुतु), 103-4 (सब)

(ख) व्यंजन समीकरण पूर्व स्वर दीर्घीकरण + अंत्य स्वर लोप

निद्रा > नींद 158 - 3 (सब)
वार्ता > बात 171-19 (कुतु), 2-10 (मन)
रात्री > रात 175-5 (कुतु) 143-11 (सब)

5.2.13. व्यंजन विपर्यय :

उच्चारण की सुविधा के लिए ध्वनियों का स्थान विपर्यय होता है । परस्य ध्वनि का उच्चारण पूर्वस्य ध्वनि के स्थान पर और पूर्वस्य ध्वनि का उच्चारण परस्य ध्वनि के स्थान पर किया जाता है । यह विपर्यय बोलचाल की भाषा में अधिक घटित होता है । वैसे साहित्यिक दक्खनी हिन्दी में भी प्र विपर्ययित शब्द प्रयोग हुआ है :

उंगल > उलंग 1-6 (से)

नन्हा > नाना 45-5 (सब)

परेशान > पशेमान 50-21 (से)

5.2.14. <u>क्षतिपूर्ति :</u>

ध्वनि लोप की स्थितियों में क्षतिपूर्ति की प्रवृत्ति मिलती है । यह भाषा विज्ञान का नियम भी है । क्षतिपूर्ति के रूप में पूर्व ह्रस्व स्वर का दीर्घीकरण प्रायः पाया जाता है ।

फुल्ल > फूल 35-23 (सब)

मुख > मुह मुँ 170-18 (कृत)

हस्ती > हाती 23-13 (मन)

5.2.15. <u>अन्य प्रवृत्तियाँ :</u>

श > स - दिशा > दिसा 16-16 (मन), 17-13 (से)

ग + ह > घ - निगाह > निघा 28-16 (से)

ड > र - खड्ग > खर्ग 23-1 (से)

म > व - नाम > नाँव 9-12 (से), 22-4 (सब)

य > ज - यमुना > जमुना 2-4 (मन)

य > व - नया > नवा 161-16 (से)

र > ड - कोठरी > कठड़ी 28-22 (वि.ना.)

ल > र - छल > छर 190-18 (से)

श > स - उर्वशी > उर्वसी 202-20 (सब)

केश > केस 94-18 {कु}

निराश > निरास 76-24 {कु}

शरीर > सरीर 103-11 {से}

शांति > सांति 223-24 {हि॰ना॰}

शहर > सेहर 184-8 {सब}

ष > ख - भाषा > भाखा 1-4 {मन}

स > श - सहमत > शहमत 75-3 {सब}

ह > ग - सिंहासन > सिंगासन 18-2 {मन}

क्ष > क्ख - सुलक्षण > सुलक्खन 173-2 {से}

क्ष > क - राक्षस > राकस 94-13 {कु}

क्ष > छ - पंक्षी > पंछी 83-20 {से}

....

6. निष्कर्ष :

भाषा की सार्थक ध्वनियों का समूह ही उस भाषा की ध्वनि व्यवस्था है । सार्थक ध्वनि व्यवस्था का निरूपण क्षेत्र कार्य के आधार पर सर्वेक्षण की प्रणाली से किया जाता है । जहाँ इस प्रकार की संभावनाएँ नहीं हैं, वहाँ भाषा के लिखित आधारों पर उसकी ध्वनि व्यवस्था को निरूपित किया जा सकता है । साहित्यिक दक्खिनी ध्वनि व्यवस्था के निरूपण के लिए उसी पद्धति पर आधारित होना आवश्यक ही था । इस आधार पर ध्वनियों के अध्ययन की व्यावहारिक कठिनाइयाँ अधिक हैं,

जिसकी ओर डा॰ श्रीराम शर्मा जी ने भी संकेत किया है । *
फिर भी इस आधार पर दक्खिनी की समस्त स्वनिम व्यवस्था के
अवलोकन से इसकी एक व्यवस्था निरूपित होती है ।

साहित्यिक दक्खिनी की स्वनिम व्यवस्था में चौदह स्वर, इक्कीस स्पर्श व्यंजन, छः अनुनासिक स्पर्श व्यंजन, नौ संघर्षी व्यंजन, पार्श्विक "ल्", लुंठित "र्", उत्क्षिप्त ड़, ढ़, अर्द्धस्वर य, ऐसा मिलते हैं । इनके अलावा सानुनासिक स्वरों की विशेषता भी इसमें उल्लेखनीय है । यह ध्वनि व्यवस्था भारतीय और विदेशी भाषाओं के परस्पर आदान-प्रदान से बनी हुई है, जिसमें स्थानीय प्रभाव भी बहुमात्रा में पाया जाता है ।

साहित्यिक दक्खिनी हिन्दी में आदि स्थानीय व्यंजन संयोग की चार स्थितियाँ मिलती हैं । और मध्य स्थानीय व्यंजन संयोग की आठ स्थितियाँ पायी जाती हैं । इनमें दो ही विभिन्न स्थानीय व्यंजनों का संयोग है । द्विव्यंजनात्मक संयोग में संस्कृत और फारसी की स्थिति ही मिलती है । अन्त्य स्थानीय व्यंजन संयोग में, व्यंजन संयोग अंत स्वर संयोग के साथ ही जुड़ा हुआ है, जिसमें सिर्फ "अ" का अस्तित्व ही पाया जाता है । इसकी भी नौ स्थितियाँ पाई

---

* दक्खिनी की ध्वनियों के निरूपण में उस सामग्री {उपलब्ध} से अधिक सहायता भी नहीं मिलती । दक्खिनी का साहित्य जिस लिपि में लिखा गया है, उसमें सभी भारतीय ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता नहीं है । आरम्भिक काल की हस्तलिखित ग्रंथ अरबी लिपि में लिखे गये हैं, जिसमें प्, ट्, च्, ग् और ड् जैसी बहुव्यवहृत ध्वनियों के लिए चिह्न नहीं हैं ।

– दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास – डा॰ श्रीराम शर्मा : पृ॰26

गयी हैं । इन सभी स्थितियों में एक ही स्वर की उपस्थिति विशेष उल्लेखनीय है ।

द्वित्व व्यंजन की स्थिति शब्द के मध्य में ही पायी जाती है । आदि स्थिति में इसका एक ही उदाहरण प्राप्त है, वह भी बलाघात के कारण ही ।

ध्वनि परिवर्तन की विभिन्न स्थितियाँ भी पायी गयी हैं । यद्यपि इस विश्लेषण में ऐतिहासिक दृष्टि नहीं रखी गयी है, फिर भी प्रवृत्तियाँ रोचक ही मिलती हैं । संस्कृत, देशी भाषाएँ, अरबी, फारसी आदि में प्राप्त समकालीन शब्द संरचना को दृष्टि में रखकर देखने पर प्राप्त होनेवाली दक्खिनीगत इन विशेषताओं के अनुशीलन से ध्वनिगत परिवर्तनों की स्थिति अत्यंत रोचक है । कुछ ऐसी दिशाएँ भी प्राप्त होती हैं, जो दक्खिनी की अपनी विशेषताएँ कही जा सकती हैं । इनमें प्रमुखत: नासिक्यीकरण व्यंजन द्वित्व, घोषीकरण, अघोषीकरण, अल्प प्राणीकरण आदि को विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है ।

......
....
..
.